प्रह्लाद उवाच

नमस्तुभ्यं जगद्धातः सर्वेषां प्राक्तनेश्वर । सर्वपूज्यः सर्वनाथः किं वक्ष्यामि तवाग्रतः ॥५३॥
हिरण्यकशिपोर्हन्ता मधुकैटभयोश्च यः । सा कला यस्य कृष्णस्य परिपूर्णतमस्य च ॥५४॥
सर्वान्तरात्मनस्तस्य चक्रं नाम सुदर्शनम् । अस्माकं लोकमस्मांश्च शश्वद्रक्ष्यति दुःसहम् ॥५५॥
ततो न बलवाञ्छंभुर्न च पाशुपतं विधे । न च काली न शेषश्च न च रुद्रादयः सुराः ॥५६॥
यस्य लोमसु विश्वानि निखिलानि जगत्पते । सर्वाधारस्य च विभोः स्थूलात्स्थूलतरस्य च ॥५७॥
षोडशांशो भगवतः स चैव हि महान्विराट् । अनन्तो न हि तत्स्थूलो न काली न बृहती ततः ॥५८॥
आगच्छन्तु सुराः सर्वे युद्धं कुर्वन्तु सांप्रतम् । न बिभेमि [1]शरेभ्यश्च न च पाशुपताद्धरात् ॥५९॥
नमस्तुभ्यं भगवते शिवाय शिवरूपिणे । नमोऽनन्ताय साधुभ्यो वैष्णवेभ्यः प्रजापते ॥६०॥
श्रीकृष्णस्य प्रसादेन निर्भयोऽहं निरामयः । न मे स्वात्मबलं ब्रह्मंस्तद्बलं यत्प्रभोर्बलम् ॥६१॥
स्वपापेन मृतस्तातो पुरा वै विष्णुनिन्दया । निर्बन्धाच्छङ्खचूडश्च दर्पाच्च मधुकैटभौ ॥६२॥
त्रिपुरः किंकरोऽस्माकं वीरत्वेन न गण्यते । तथाऽपि प्रेरितस्तेन सरथश्च महेश्वरः ॥६३॥
इत्युक्त्वा दानवश्रेष्ठो विरराम च संसदि । उवाच जगतां धाता पुनरेव च नारद ॥६४॥

प्रह्लाद बोले—हे जगत् के विधाता एवं सभी के प्राचीन अधीश्वर! आप सभी के पूज्य और सभी के स्वामी हैं, अतः आपके सामने मैं क्या कहूँ ॥५३॥ जो हिरण्यकशिपु और मधुकैटभ का हनन करने वाला है, वह जिसकी कला है वह भगवान् श्रीकृष्ण परिपूर्णतम हैं और सभी के अन्तरात्मा हैं। उनका दुःसह सुदर्शन चक्र हमारे लोक और हम लोगों की निरन्तर रक्षा करेगा। हे विधे! उससे बलवान् न शिव हैं, न पाशुपत अस्त्र, न काली, न शेष, और न रुद्र आदि देवता हैं ॥५४-५६॥ हे जगत्पते! जिसके लोम में समस्त विश्व निहित है और जो सभी का आधार, विभु और स्थूल से स्थूलतर है ॥५७॥ उसी भगवान् का सोलहवाँ अंश महान् विराट् है। उसके समान स्थूल न तो अनन्त है और न काली ही उससे बड़ी है ॥५८॥ अब सभी देवगण आयें और युद्ध करें क्योंकि शिवके बाणों और उनके पाशुपत से मैं डरता नहीं ॥५९॥ हे प्रजापते! शिव (कल्याण) रूपी उस भगवान् शिव को नमस्कार है, अनन्त को नमस्कार है, साधु, वैष्णवों को नमस्कार है ॥६०॥ हे प्रभो! भगवान् श्रीकृष्ण के प्रसाद से मैं निर्भय और स्वस्थ हूँ। मेरा अपना कुछ बल नहीं है, जो कुछ है वह प्रभु का है ॥६१॥ पूर्वकाल में मेरे पिता अपने पाप—विष्णु की निन्दा—करने से मरे। निर्बन्ध (दुराग्रह) के कारण शंखचूड मारा गया और दर्प (अभिमान) के नाते मधुकैटभ का निधन हुआ। त्रिपुर हम लोगों का किंकर (सेवक) था, वीरों में उसकी गणना नहीं है। तथापि उससे उकसाये जाने पर महादेव ने रथ पर बैठ कर उसका संहार किया था ॥६२-६३॥ हे नारद! सभा में दानवश्रेष्ठ प्रह्लाद इतना कहकर चुप हो गये, अनन्तर जगत् के विधाता ब्रह्मा ने पुनः कहना आरम्भ किया ॥६४॥

---

१ क. सुरे० ।

ब्रह्मोवाच

विनाशकारणं युद्धमुभयोर्दैत्यदेवयोः । सुप्रीत्याचरणं वत्स सर्वमङ्गलकारणम् ॥६५॥
तारां भिक्षां देहि मह्यं भिक्षुकाय च वेधसे । विमुखे भिक्षुके राजन्गृहस्थः सर्वपापभाक् ॥६६॥

सनत्कुमार उवाच

स्वकीर्तिं रक्ष राजेन्द्र सिंहस्त्वं सुरदैत्ययोः । यस्य भिक्षुर्जगद्धाता तस्य कीर्तेश्च का कथा ॥६७॥

सनातन उवाच

न जितस्त्वं सुरेन्द्रैश्च ब्रह्मेशानपुरोगमैः । रक्षितः कृष्णचक्रेण वैष्णवः पुण्यवाञ्छुचिः ॥६८॥

सनन्दन उवाच

यस्येष्टदेवः सर्वात्मा श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः । गुरुश्च वैष्णवः शुक्रः स च केन जितो महान् ॥६९॥

सनक उवाच

पुण्यवान्न जितः केन जितः पापी स्वपातकैः । पुण्यदीपो न निर्वाति पाषण्डेनैव वायुना ॥७०॥

ऋषय ऊचुः

देहि तारां महाभाग चन्द्रं प्राणाधिकं गुरोः । स्वकीर्तिं रक्ष सुचिरं प्रार्थयामः पुनः पुनः ॥७१॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स! युद्ध देव-दानव दोनों कुल के विनाश का कारण होगा, अतः अति प्रेम से व्यवहार करो, जो समस्त मंगलों का कारण है॥६५॥ हे राजन्! मैं ब्रह्मा होकर तुम्हारे यहाँ भिक्षुक बना हूँ, अतः मुझे भिक्षा रूप में तारा को दे दो। क्योंकि भिक्षुक के विमुख होने पर गृहस्थ को समस्त पाप का भागी होना पड़ता है॥६६॥

सनत्कुमार बोले—हे राजेन्द्र! देव और दैत्य के वंश में तुम सिंह हो, अतः अपनी कीर्ति की रक्षा करो। और जिसके यहाँ (द्वार पर) जगत् के विधाता भिक्षुक हों, उसकी कीर्ति की कौन बात कही जाये॥६७॥

सनातन बोले—ब्रह्मा, शिव आदि देवगण तुम्हें जीत नहीं सके, क्योंकि तुम पुण्यवान् एवं पवित्र वैष्णव हो और इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण के चक्र से सुरक्षित हो॥६८॥

सनन्दन बोले—जिसके इष्टदेव सर्वात्मा श्रीकृष्ण हैं, जो प्रकृति से परे हैं और गुरु वैष्णव शुक्र हैं, उस महान् को कौन जीत सकता है॥६९॥

सनक बोले—पुण्यवान् को कोई नहीं जीत सकता है। पापी अपने पातकों से विजित होता है। क्योंकि पाषण्डरूपी वायु से पुण्यदीप कभी भी नहीं बुझता॥७०॥

ऋषिगण बोले—हे महाभाग! गुरु (बृहस्पति) को तारा और प्राणों से बढ़कर चन्द्रमा दे दो। मैं बार-बार प्रार्थना करता हूँ कि अपनी कीर्ति को अति चिरकाल तक के लिए सुरक्षित रखो॥७१॥

प्रह्लाद उवाच

स्थिते मदीश्वरे साक्षान्नहि भृत्यो विराजते। कर्तारं ब्रूहि मन्नाथं गुरुं शुक्रं सतां वरम् ॥७२॥
शिष्याणामाधिपत्ये च साधूनां गुरुरीश्वरः। गुरौ समर्पितं पूर्वं[1] सर्वैश्वर्यं मुनीश्वरे ॥७३॥
वयं भृत्याश्च पोष्याश्च स्वगुरोः परिचारकाः। ते च शिष्याः कुशलिनः गुर्वाज्ञां पालयन्ति ये ॥७४॥
प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा चकार प्रार्थनां कविम्। ददौ शुक्रश्च तारां तां चन्द्रं च मलिनं मुने ॥७५॥
दत्त्वा तारां विधुं शुक्रः प्रणनाम विधेः पदे। नमस्कृत्य मुनिभ्यश्च प्रणतः स्वपुरं ययौ ॥७६॥
प्रह्लादः सगणो भक्त्या नमस्कृत्य विधेः पदे। प्रत्येकं वै मुनिगणान्प्रणतः स्वगृहं ययौ ॥७७॥
ब्रह्मा ददर्श तारां च प्रणतां स्वपदे सतीम्। लज्जया नम्रवक्त्रां च रुदतीं गर्विणीं मुने ॥७८॥
चन्द्रं च प्रणतं धाता क्रोडे संस्थाप्य मायया। उवाच मलिनां तारां कातरां च कृपामयः ॥७९॥
तारे त्यज भयं मत्तो भयं किं ते मयि स्थिते। सौभाग्ययुक्ता स्वपतौ भविष्यसि वरेण मे ॥८०॥
दुर्बला बलिना ग्रस्ता निष्कामा न च्युता भवेत्। प्रायश्चित्तेन शुद्धा सा न स्त्री जारेण दुष्यति ॥८१॥
सकामा कामतो जारं भजते स्वसुखेन च। प्रायश्चित्तान्न शुद्धा सा स्वामिना परिवर्जिता ॥८२॥

प्रह्लाद बोले—हम लोगों के अधीश्वर के साक्षात् विद्यमान रहते हुए, कोई सेवक उस पद को सुशोभित नहीं कर सकता है (अर्थात् इसकी स्वीकृति प्रदान नहीं कर सकता)। यह बातें मेरे गुरु एवं स्वामी शुक्र से कहिये, जो सज्जनों में प्रवर हैं। सज्जन शिष्यों के अधिपति गुरु होते हैं, जो ईश्वर के समान होते हैं। मैंने अपना समस्त ऐश्वर्य पूर्वकाल में ही गुरु को सौंप दिया था ॥७२-७३॥ हम लोग अपने गुरु के सेवक एवं पोष्य वर्ग हैं क्योंकि वे ही शिष्य कुशली कहे जाते हैं जो गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं ॥७४॥ हे मुने! प्रह्लाद की ऐसी बातें सुनकर उन्होंने कवि (शुक्र) से प्रार्थना की। अनन्तर शुक्र ने तारा को और पापी चन्द्रमा को उन्हें लौटा दिया ॥७५॥ शुक्र ने तारा और चन्द्रमा को देकर ब्रह्मा का चरणस्पर्श करते हुए उन्हें प्रणाम किया और विनय-विनम्र होकर मुनियों को प्रणाम करके अपने नगर को चले गये ॥७६॥ अपने गण समेत प्रह्लाद ने भी भक्तिपूर्वक ब्रह्मा का चरण स्पर्श करके प्रत्येक मुनिगण को प्रणाम किया और अपने गृह चले गये ॥७७॥ हे मुने! ब्रह्मा ने सती तारा को अपना चरणस्पर्श करते देखा जो लज्जा से नीचे मुख किये, गर्भिणी एवं रोदन कर रही थी ॥७८॥ अनन्तर प्रणाम करते हुए चन्द्रमा को देखकर दयालु ब्रह्मा ने उन्हें उठाया और माया से अपनी गोद में बैठा कर मलिन तथा डरी हुई तारा से कहा ॥७९॥ हे तारे! मुझसे भय न करो और मेरे रहते तुम्हें भय कैसा? मेरे वरदान द्वारा तुम पुनः अपने पति की सौभाग्यशालिनी हो जाओगी ॥८०॥ क्योंकि दुर्बला निष्काम स्त्री किसी बलवान् से ग्रस्त होने पर (स्वधर्म से) च्युत नहीं होती है। वह प्रायश्चित्त से शुद्ध हो जाती है, और जार (व्यभिचारी) द्वारा दूषित नहीं मानी जाती ॥८१॥ जो कामनापूर्वक कामुकी होकर अपने सुख के लिए जार (व्यभिचारी) पुरुष का सेवन करती है, उसकी शुद्धि प्रायश्चित्त से भी नहीं होती है, इसीलिए वह पति-

---

१ क. पूर्णं।

कुम्भीपाके पच्यते सा यावच्चन्द्रदिवाकरौ। अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं स्पर्शनं सर्वपापदम्॥८३॥
पापीयस्याश्च तस्याश्च साधुभिः परिवर्जितम् ॥८४॥
कस्य गर्भं वद शुभे गच्छ वत्से गुरोर्गृहम्। त्यज लज्जां महाभागे सर्वं च प्राक्तनाद्भवेत्॥८५॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा तमुवाच सती तदा। चन्द्रस्य गर्भं हे तात बिभर्म्यद्य स्वकर्मणा॥८६॥
सर्वे मे साक्षिणः सन्ति दुर्बलायाः प्रजापते। यदा जग्राह चन्द्रो मां दयाहीनश्च दुर्मतिः।८७॥
इत्युक्त्वा तारकादेवी सुषाव कनकप्रभम्। कुमारं सुन्दरं तत्र ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥८८॥
गृहीत्वा तनयं चन्द्रो नत्वा ब्रह्माणमीश्वरम्। जगाम स स्वभवनं ब्रह्मा सिन्धुतटं ययौ॥८९॥
साध्वीं तारां च गुरवे देवेभ्योऽप्यभयं ददौ। आशिषं शंभुधर्माभ्यां दत्त्वा लोकं ययौ विधिः॥९०॥
देवा ययुः स्वभवनं स्वगृहं च बृहस्पतिः। भावानुरक्तवनितां प्राप्य संहृष्टमानसः॥९१॥
तारकागर्भसंभूतः स एव च बुधः स्वयम्। तेजस्वी सद्ग्रहो ब्रह्मंश्चन्द्रस्य तनयो महान्॥९२॥
स एव नन्दनवने चित्रां संप्राप्य निर्जने। घृताच्या गर्भसंभूतां कुबेरस्य च रेतसा॥९३॥
दृष्ट्वा च निर्जने रम्यां कन्यां कमललोचनाम्। अतीव यौवनस्थां च बालां षोडशवार्षिकीम्।
गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राह विधोः सुतः ॥९४॥

त्यक्ता हो जाती है॥८२॥ तथा चन्द्र-सूर्य के समय तक वह कुम्भीपाक नरक में पकती रहती है। उसका अन्न विष्ठा के तुल्य, जल मूत्र के समान और स्पर्श समस्तपापप्रदायक होता है॥८३॥ अतः उस अत्यन्त पापिनी का अन्न-पान साधुओं को त्याज्य है। हे वत्से! अब यह बताओ कि यह किसका गर्भ है? और तुम बृहस्पति के यहाँ चली जाओ॥८४॥ हे महाभागे! अब लज्जा त्याग दो, क्योंकि सभी कुछ प्राक्तन (जन्मान्तरीय) कर्म के अनुसार ही होता है। ब्रह्मा की ऐसी बातें सुनकर उस पतिव्रता ने उनसे कहा—हे तात! यह चन्द्रमा का गर्भ है, जिसका अपने कर्मानुसार मैं भरण-पोषण कर रही हूँ। हे प्रजापते! जिस समय दुष्टबुद्धि एवं निर्दय चन्द्रमा ने मुझ दुर्बला को पकड़ लिया उस समय के सभी लोग मेरे साक्षी हैं। इतना कहकर तारा ने सुवर्ण के समान प्रभापूर्ण एक कुमार उत्पन्न किया॥८५-८७॥ उस सुन्दर कुमार को, जो ब्रह्मतेज से देदीप्यमान था, लेकर चन्द्रमा ने ब्रह्मा को नमस्कार किया और अपने घर चले गये। पश्चात् ब्रह्मा भी बृहस्पति को तारा सौंपकर, देवों को अभय और शिव एवं धर्म को शुभाशिष प्रदान कर अपने लोक चले गये। अनन्तर देवता लोग और बृहस्पति भी अपने-अपने घर गये॥८८-९०॥ अपनी भावानुरागिणी स्त्री को पुनः प्राप्त कर गुरु अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस प्रकार तारा के गर्भ से उत्पन्न होनेवाले कुमार का नाम बुध हुआ। हे ब्रह्मन्! चन्द्रमा का वह (बुध) पुत्र महान् तेजस्वी एवं उत्तम ग्रह हुआ। उसी बुध ने एक बार निर्जन नन्दन वन में चित्रा को देखकर, जो कुबेर के वीर्य से घृताची अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी तथा रम्य, कमल के समान नेत्रों वाली तथा पूर्ण यौवन सम्पन्न सोलह वर्ष की बाला थी, गान्धर्व विवाह द्वारा उसको अपना लिया॥९१-९४॥ एकान्त में उसके साथ उपभोग कर उन्होंने उसमें

तस्यामथायं रहसि वीर्याधानं चकार सः। बभूव राजा चित्रायां चैत्रो वै मण्डलेश्वरः॥९५॥
सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं शास्ति वै धार्मिको बली। शतं नद्यो घृतानां च दध्नां नद्यः शतानि च॥९६॥
शतानि नद्यो दुग्धानां मधुनद्यश्च षोडश। दश नद्यश्च तैलानां शर्करालक्षराशयः॥९७॥
मिष्टान्नानां स्वस्तिकानां लक्षराश्यश्च नित्यशः। पञ्चकोटिगवां मांसं सापूपं स्वन्नमेव च॥९८॥
एतेषां च नदीराशीर्भुञ्जते ब्राह्मणा मुने। गवां लक्षं च रत्नानां मणीनां लक्षमेव च॥९९॥
शतलक्षं सुवर्णानां लक्षं वै सूक्ष्मवाससाम्। रत्नानां भूषणं पात्रमतीव सुमनोहरम्॥१००॥
ददौ द्विजातये राजा नित्यं वै जीवितावधि। तस्य चैत्रस्य पुत्रश्च राजाऽधिरथ एव च॥१०१॥
तस्य पुत्रश्च सुरथश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः। महाज्ञानं च संप्राप्य मेधसो मुनिसत्तमात्॥१०२॥
भेजे पुरा विष्णुमायां पुण्यक्षेत्रे च भारते। शरत्काले महापूजां चकार स सरित्तटे॥१०३॥
वैश्येन सार्धं स महाज्ञानिनां मुनिसत्तम। राजा कलिङ्गदेशस्य विराधश्च विशां वरः॥१०४॥
तस्य पुत्रो महायोगी द्रुमिणो ज्ञानिनां वरः। द्रुमिणो वैष्णवः प्राज्ञः पुष्करे दुष्करं तपः॥१०५॥
कृत्वा समाधिं संप्राप ज्ञानिनां वैष्णवाग्रणीः। पुत्रैर्दारैर्निरस्तश्च धनलोभाद्दुरात्मभिः॥१०६॥
स च कोटिसुवर्णं च नित्यं दत्त्वा जलं पपौ। मुक्तिं संप्राप संसेव्य विष्णुमायां सनातनीम्॥१०७॥

गर्भाधान किया, जिससे चित्रा में चैत्र नामक मण्डलेश्वर राजा उत्पन्न हुआ॥९५॥ उस धार्मिक तथा बलवान् (राजा) ने सातों द्वीप वाली पृथिवी पर (एकच्छत्र) शासन किया। उसके शासन-काल में घृत की सौ नदियाँ, दही की सौ नदियाँ, दुग्ध की सौ नदियाँ, मधु (शहद) की सोलह नदियाँ एवं तेल की दश नदियाँ बहती थीं। तथा एक लक्ष शक्कर की राशि और लड्डुओं तथा मिष्टान्नों की नित्य एक लक्षराशि, पाँच करोड़ मांस-राशि, एवं मालपूआ आदि समेत सुन्दर भोजन बनता था। हे मुने! इन नदियों एवं राशियों के उपभोग ब्राह्मण-वृन्द नित्य करते थे। इस भाँति राजा अपने जीवन काल तक नित्य एक लाख गौ, एक लाख रत्न मणि, सौ लाख सुवर्ण, एक लाख सूक्ष्म वस्त्र, रत्नों के आभूषण और अति मनोहर पात्र ब्राह्मणों को दान करता था। अनन्तर उस चैत्र राजा के अधिरथ नामक पुत्र हुआ॥९६-१०१॥ उसके सुरथ नामक चक्रवर्ती राजा बृहच्छ्रवा पुत्र हुआ, जिसने पूर्वकाल में मुनिश्रेष्ठ मेधस् ऋषि से महाज्ञान को प्राप्ति कर पुण्यक्षेत्र भारत में विष्णुमाया (दुर्गा) को उपासना की थी। उस महाज्ञानी ने शारदीय नवरात्र में नदी के तट पर वैश्य के साथ महापूजा सुसम्पन्न की॥१०२-१०३॥ हे मुनिश्रेष्ठ! कलिंग देश का राजा विराध वैश्यों में श्रेष्ठ था। उसका पुत्र द्रुमिण महायोगी एवं ज्ञानिप्रवर हुआ। महाबुद्धिमान् एवं वैष्णव द्रुमिण ने पुष्कर क्षेत्र में महाकठिन तप किया जिससे उसके समाधि-नामक पुत्र प्राप्त हुआ, जो ज्ञानियों और वैष्णवों में अग्रणी था। उसके दुष्ट पुत्र और स्त्री ने धन के लोभ से उसे घर से निकाल दिया था, जो नित्य करोड़ सुवर्ण-मुद्रा दान कर जल पीता था। उपरान्त उसने सनातनी विष्णुमाया (दुर्गा) की आराधना करके मुक्ति प्राप्त की॥१०४-१०७॥ हे मुने! इस प्रकार उस

राजा लेभे मनुत्वं च राज्यं निष्कण्टकं मुने। उवाच मधुरं वाक्यं धाता त्रिजगतां पतिः ॥१०८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० गुरोस्ताराप्राप्ति-
बुधोत्पत्त्यादिवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

कथं राजा महाज्ञानं संप्राप मुनिसत्तमात्। वैश्यो मुक्तिं मेधसश्च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

नारायण उवाच

ध्रुवस्य पौत्रो बलवान्नन्दिरुत्कलनन्दनः। स्वायंभुवमनोर्वंश्यः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥२॥
अक्षौहिणीनां शतकं गृहीत्वा सैन्यमेव च। कोलां च वेष्टयामास सुरथस्य महामतेः ॥३॥
युद्धं बभूव नियतं पूर्णमब्दं च नारद। चिरंजीवी वैष्णवश्च जिगाय सुरथं नृपः ॥४॥
एकाकी सुरथो भीतो नन्दिना च बहिष्कृतः। निशायां हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥५॥
ददर्श तत्र वैश्यं च पुष्पभद्रानदीतटे। तयोर्बभूव संप्रीतिः कृतबान्धवयोर्मुने ॥६॥

राजा ने निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया तथा जन्मान्तर में वह मनु हुआ जिसे तीनों लोकों के स्वामी विधाता ने मधुर वाक्य कहा था ॥१०८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृति खण्ड में नारद-नारायण-संवादान्तर्गत दुर्गोपाख्यान में गुरु को तारा की प्राप्ति और बुध की उत्पत्ति आदि का वर्णन नामक इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६१॥

अध्याय ६२

सुरथ और वैश्य की मनःकामना-सिद्धि

नारद बोले—राजा सुरथ को मुनिश्रेष्ठ मेधस् द्वारा महाज्ञान की प्राप्ति और वैश्य (समाधि) को मुक्ति की प्राप्ति कैसे हुई थी, मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

श्री नारायण बोले—ध्रुव के पौत्र राजा नन्दि ने जो बलवान्, उत्कल का पुत्र, स्वायम्भुव मनु के वंश में उत्पन्न, सत्यवक्ता और इन्द्रियसंयमी था, अपनी सौ अक्षौहिणी सेना लेकर बुद्धिमान् सुरथ की कोला नगरी को घेर लिया ॥२-३॥ हे नारद! पूरे वर्ष तक नियत रूप से युद्ध होता रहा। अनन्तर चिरजीवी एवं वैष्णव राजा नन्दि ने सुरथ को जीत लिया ॥४॥ एकाकी एवं भयभीत सुरथ नन्दि द्वारा निकाल दिये जाने पर आधी रात के समय घोड़े पर बैठकर घोर वन में चला गया ॥५॥ वहाँ पुष्पभद्रा नदी के तट पर उसे एक वैश्य दिखायी पड़ा। हे मुने! उन दोनों में अतिप्रेम और भाईचारे का दृढ़ सम्बन्ध स्थापित हुआ ॥६॥

वैश्येन साधं नृपतिरगच्छन्मेधसाश्रमम्। पुष्करं दुष्करं पुण्यक्षेत्रं वै भारते सताम्॥७॥
ददर्श तत्र नृपतिर्मुनीन्द्रं तीव्रतेजसम्। शिष्येभ्यश्च प्रवोचन्तं ब्रह्मतत्त्वं सुदुर्लभम्॥८॥
राजा ननाम वैश्यश्च शिरसा मुनिपुंगवम्। मुनिस्तौ पूजयामास ददौ ताभ्यां शुभाशिषम्॥९॥
प्रश्नं चकार कुशलं जातिनाम पृथक्पृथक्। ददौ प्रत्युत्तरं राजा क्रमेण मुनिपुंगवम्॥१०॥

सुरथ उवाच

राजाऽहं सुरथो [1]ब्रह्मंश्चैत्रवंशसमुद्भवः। बहिष्कृतः स्वराज्याच्च नन्दिना बलिनाऽधुना॥११॥
कमुपायं करिष्यामि कथं राज्यं भवेन्मम। तन्मां ब्रूहि महाभाग त्वामेव शरणागतम्॥१२॥
अयं वैश्यः समाधिश्च स्वगृहाच्च बहिष्कृतः। पुत्रैः कलत्रैर्दैवेन धनलोभेन धार्मिकः॥१३॥
ब्राह्मणाय ददौ नित्यं रत्नकोटिं दिने दिने। निषिध्यमानः पुत्रैश्च कलत्रैर्बान्धवैरयम्॥१४॥
कोपान्निराकृतस्तैश्च पुनरन्वेषितः शुचा। अयं गृहं च न ययौ विरक्तो ज्ञानवाञ्छुचिः॥१५॥
पुत्राश्च पितृशोकेन गृहं त्यक्त्वा ययुर्वनम्। दत्त्वा धनानि विप्रेभ्यो विरक्ताः सर्वकर्मसु॥१६॥
सुदुर्लभं हरेर्दास्यं वैश्यस्यास्य च वाञ्छितम्। कथं प्राप्नोति निष्कामस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१७॥

अनन्तर वैश्य को साथ लेकर राजा सुरथ मेधस् मुनि के आश्रम पुष्कर में गये, जो भारत में सज्जनों को कठिनता से प्राप्त होनेवाला पुण्यक्षेत्र है॥७॥ वहाँ राजा ने तीक्ष्ण तेज से युक्त मुनि को देखा, जो शिष्यों को अतिदुर्लभ ब्रह्मतत्त्व बता रहे थे॥८॥ राजा और वैश्य दोनों ने मुनिश्रेष्ठ को शिर से प्रणाम किया तथा मुनि ने भी शुभाशिष प्रदानपूर्वक दोनों का स्वागत किया॥९॥ पृथक्-पृथक् जाति और नाम पूछते हुए उन्होंने उन दोनों से कुशल मंगल पूछा। राजा ने क्रमशः मुनिश्रेष्ठ को उत्तर दिया॥१०॥

सुरथ बोले—हे ब्रह्मन्! मैं चैत्र-वंश में उत्पन्न सुरथ नामक राजा हूँ। सम्प्रति बलवान् राजा नन्दि ने मुझे मेरे राज्य से पृथक् कर दिया है॥११॥ हे महाभाग! मैं क्या उपाय करूँ जिससे मुझे अपना राज्य पुनः प्राप्त हो जाये, मुझे बतायें, इसीलिए मैं आपकी शरण आया हूँ॥१२॥ यह समाधि नामक वैश्य है। दैववश धन के लोभ से पुत्र और स्त्री ने इस धार्मिक को अपने घर से निकाल दिया है॥१३॥ यह प्रतिदिन ब्राह्मणों को करोड़ रत्न का दान देते थे। पुत्रों, स्त्रियों और बन्धुओं ने इन्हें मना किया। अन्त में न मानने पर क्रुद्ध होकर उन लोगों ने इन्हें निकाल दिया। क्रोध शान्त होने पर पुनः उन लोगों ने इनका पता लगाया। किन्तु ज्ञानी और पवित्र-हृदय होने के नाते इन्हें विराग हो गया, जिससे ये पुनः घर नहीं लौट सके॥१४-१५॥ उधर पुत्रलोग पिता के शोक में घर छोड़कर वन चले गये। वहाँ सभी कर्मों से विरक्त होकर उन्होंने ब्राह्मणों को समस्त धन दे डाले॥१६॥ अब इनकी एकमात्र यही अभिलाषा है कि—'किस प्रकार भगवान् की अतिदुर्लभ दास्यभक्ति प्राप्त हो।' इन निष्काम को यह कैसे प्राप्त होगी, मुझे बताने की कृपा करें॥१७॥

१क० नाम चै०।

मेधा उवाच

करोति मायया छन्नं विष्णुमाया दुरत्यया। निर्गुणस्य च कृष्णस्य त्रिगुणा विश्वमाज्ञया ॥१८॥
कृपां करोति येषां सा धर्मिणां च कृपामयी। तेभ्यो ददाति कृपया कृष्णभक्तिं सुदुर्लभाम् ॥१९॥
येषां मायाविनां माया न करोति कृपां नृप। मायया तान्निबध्नाति मोहजालेन दुर्गतान् ॥२०॥
नश्वरे नित्यसंसारे भ्रामयेद्बर्बरा सदा। कुर्वती नित्यबुद्धिं च विहाय परमेश्वरम् ॥२१॥
देवमन्यं निषेवन्ते तन्मन्त्रं च जपन्ति च। मिथ्या किंचिन्निमित्तं च कृत्वा मनसि लोभतः ॥२२॥
सप्तजन्मसु संसेव्य देवताश्च हरेः कलाः। तदा प्रकृत्याः कृपया सेवन्ते प्रकृतिं सदा ॥२३॥
सप्तजन्मसु संसेव्य विष्णुमायां कृपामयीम्। शिवे भक्तिं लभन्ते ते ज्ञानानन्दे सनातने ॥२४॥
ज्ञानाधिष्ठातृदेवं च हरेः संसेव्य शंकरम्। अचिराद्विष्णुभक्तिं च प्राप्नुवन्ति महेश्वरात् ॥२५॥
सेवन्ते सगुणं सत्त्वं विष्णुं विषयिणं तदा। सत्त्वज्ञानाच्च पश्यन्ति ज्ञानं वै निर्मलं नराः ॥२६॥
निषेव्य सगुणं विष्णुं सात्त्विका वैष्णवा नराः। लभन्ते निर्गुणे भक्तिं श्रीकृष्णे प्रकृतेः परे ॥२७॥
गृह्णन्ति सन्तस्तद्भक्ता मन्त्रं तस्य निरामयम्। निषेव्य निर्गुणं देवं ते भवन्ति च निर्गुणाः ॥२८॥
असंख्यब्रह्मणां पातं ते च पश्यन्ति वैष्णवाः। दास्यं कुर्वन्ति सततं गोलोके च निरामये ॥२९॥

मेधस् ऋषि बोले—अजेय तथा त्रिगुणात्मक विष्णुमाया निर्गुण भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से समस्त विश्व को आच्छन्न किये (ढके) रहती है॥१८॥ वह कृपामयी जिन धार्मिक जनों पर कृपा करती है, उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण की अतिदुर्लभ भक्ति प्रदान करती है॥१९॥ हे नृप! जिनके ऊपर यह माया कृपा नहीं करती है, उन्हें अपनी माया से (सांसारिक पदार्थों) में बाँधे रहती है, और मोहजाल में फँसाकर उनकी दुर्गति कराती है॥२०॥ इस नश्वर एवं अनित्य संसार में उन्हें यह सदैव भ्रमण कराती है और परमेश्वर से अलग करके संसार में नित्य बद्धि उत्पन्न करा देती है ॥२१॥ जिससे वे प्राणी लोभवश मन में कुछ मिथ्या निमित्त बनाकर अन्य देव की उपासना एवं उसका मंत्र जपते हैं॥२२॥ सात जन्मों में भगवान् की कला (अंश) रूप देवों की सेवा करने के उपरान्त प्रकृति (दुर्गा) की कृपा से वे दुर्गा के भक्त होते हैं ॥२३॥ पुनः सात जन्मों तक कृपामयी एवं सनातनी विष्णुमाया (दुर्गा) की सेवा करने के बाद भगवान् शिव की भक्ति प्राप्त होती है, जो सनातन एवं ज्ञानानन्द रूप हैं॥२४॥ पुनः ज्ञान के अधिष्ठाता देव भगवान् शंकर की सेवा करने पर, उनके द्वारा भगवान् विष्णु की भक्ति शीघ्र प्राप्त हो जाती है॥२५॥ और सगुण एवं सत्त्व रूप विषयी विष्णु की सेवा करने पर मनुष्यों को सत्त्वज्ञान द्वारा निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है॥२६॥ इस प्रकार सगुण विष्णु की सेवा करने पर सात्त्विक वैष्णव जनों को निर्गुण भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति प्राप्त होती है, जो प्रकृति से परे हैं॥२७॥ उनके भक्त सन्त लोग उनका निरामय (निर्विकार) मंत्र ग्रहण करते हैं और उसके द्वारा निर्गुण देव (भगवान् श्रीकृष्ण) की सेवा कर के स्वयं भी निर्गुण हो जाते हैं॥२८॥ वे वैष्णव लोग निरामय गोलोक में भगवान् की दास्य भक्ति द्वारा सेवा करते हुए असंख्य ब्रह्मा का पतन (पूरी आयु में मरण) देखते हैं॥२९॥ जो श्रेष्ठ मनष्य,

कृष्णभक्तात्कृष्णमन्त्रं यो गृह्णाति नरोत्तमः । पुरुषाणां सहस्रं च स्वपितॄणां समुद्धरेत् ॥३०॥
मातामहानां साहस्रमुद्धरेन्मातरं तथा । दासादिकं समुद्धृत्य गोलोकं स प्रयाति च ॥३१॥
भवार्णवे महाघोरे कर्णधारस्वरूपिणी । दीनान्पारयते नित्यं कृष्णभक्त्या च नौकया ॥३२॥
स्वकर्मबन्धनं छेत्तुं वैष्णवानां च वैष्णवी । तीक्ष्णशस्त्रस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥३३॥
विवेचिका चाऽऽवरणी शक्तेः शक्तिर्द्विधा नृप । पूर्वं ददाति भक्ताय चेतराय परात्परा ॥३४॥
सत्यस्वरूपः श्रीकृष्णस्तस्मात्सर्वं च नश्वरम् । बुद्धिर्विवेचिकेत्येवं वैष्णवानां सतामपि ॥३५॥
नित्यरूपा ममेयं श्रीरिति चाऽऽवरणी च धीः । अवैष्णवानामसतां कर्मभोगभुजामहो ॥३६॥
अहं प्रचेतसः पुत्रः पौत्रश्च ब्रह्मणो नृप । भजामि कृष्णमात्मानं ज्ञानं संप्राप्य शंकरात् ॥३७॥
गच्छ राजन्नदीतीरं भज दुर्गां सनातनीम् । बुद्धिमावरणीं तुभ्यं देवी दास्यति कामिने ॥३८॥
निष्कामाय च वैश्याय वैष्णवाय च वैष्णवी । बुद्धिं विवेचिकां शुद्धां दास्यत्येव कृपामयी ॥३९॥
इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो ददौ ताभ्यां कृपानिधिः । पूजाविधानं दुर्गायाः स्तोत्रं च कवचं मनुम् ॥४०॥
वैश्यो मुक्तिं च संप्राप तां निषेव्य कृपामयीम् । राजा राज्यं मनुत्वं च परमैश्वर्यमीप्सितम् ॥४१॥

भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त द्वारा उनका मंत्र ग्रहण करता है, वह अपने पूर्वजों की सहस्र पीढ़ियों के उद्धार समेत मातामह (नाना) की सहस्र पीढ़ियों का तथा माता और भृत्य (नौकर) आदि का उद्धार करता है और अन्त में गोलोक चला जाता है ॥३०-३१॥ वैष्णवी माया महाघोर संसार-सागर में भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति रूपी नौका के द्वारा कर्णधार स्वरूप होकर दीनों को नित्य पार करती है ॥३२॥ एवं परमात्मा श्रीकृष्ण की वैष्णवी माया तीक्ष्ण शस्त्र स्वरूप होकर वैष्णवों के स्वकर्म-बन्धन को काटती है ॥३३॥ हे नृप! शक्ति के विवेचिका और आवरणी नामक—दो भेद हैं। वह सर्वप्रथम भक्त को आवरणी शक्ति प्रदान करती है ॥३४॥ 'भगवान् श्रीकृष्ण सत्य स्वरूप हैं, उनसे पृथक् सभी वस्तुएँ नश्वर हैं' इस प्रकार की विवेचिका (विवेचन करने वाली) बुद्धि भी वह सनातनी देवी वैष्णवों को प्रदान करती है ॥३५॥ और कर्म-भोग भोगने वाले अवैष्णव असज्जनों को, 'मेरी यह लक्ष्मी नित्यस्थायी है' ऐसी आवरणी (मोहात्मक) शक्ति सदैव बनी रहती है, यह आश्चर्य की बात है ॥३६॥ हे नृप! मैं वरुण का पुत्र और ब्रह्मा का पौत्र हूँ। शंकर जी द्वारा ज्ञान प्राप्त कर आत्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण को यहाँ भजता हूँ ॥३७॥ हे राजन्! तुम भी नदी के तीर पर जाकर सनातनी दुर्गा की आराधना करो। तुम्हें कामना है, अतः तुम्हें आवरणी बुद्धि प्राप्त होगी ॥३८॥ और कृपामयी एवं वैष्णवी वह भगवती निष्काम एवं वैष्णव उस वैश्य को विवेचिका (विवेचन करने वाली) शुद्ध बुद्धि प्रदान करेगी ॥३९॥ कृपानिधान मुनिश्रेष्ठ ने इतना कह कर उन दोनों को दुर्गा जी का पूजा-विधान, स्तोत्र, कवच और मंत्र प्रदान किया ॥४०॥ अनन्तर वैश्य ने उस कृपामयी भगवती की सेवा करके मुक्ति प्राप्त की और राजा को यथेच्छ परमैश्वर्य समेत राज्य और मनुत्व (मनु होना)

इत्येवं कथितं सर्वं दुर्गोपाख्यानमुत्तमम्। सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥४२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० सुरथमेधःसं० सुरथवैश्ययो-
रभिलषितसिद्धिर्नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२॥

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग वद वेदविदां वर। राजा केन प्रकारेण सिषेवे प्रकृतिं पराम्॥१॥
समाधिर्नाम वैश्यो वा निष्कामं निर्गुणं विभुम्। भेजे केन प्रकारेण प्रकृतेरुपदेशतः॥२॥
किं वा पूजाविधानं च ध्यानं वा मनुमेव च। किं स्तोत्रं कवचं किं वा ददौ राज्ञे महामुनिः॥३॥
वैश्याय प्रकृतिस्तस्मै किं वा ज्ञानं ददौ परम्। साक्षाद्बभूव [1]तपसा केन वा प्रकृतिस्तयोः॥४॥
ज्ञानं संप्राप्य वैश्यश्च किं पदं प्राप दुर्लभम्। गतिर्बभूव राज्ञश्च का वा तां च शृणोम्यहम्॥५॥

नारायण उवाच

राजा वैश्यश्च संप्राप्य मन्त्रं वै मेधसो मुनेः। स्तोत्रं च कवचं देव्या ध्यानं चैव पुरस्क्रियाम्॥६॥

प्राप्त हुआ॥४१॥ इस प्रकार मैंने परमोत्तम दुर्गा जी का उपाख्यान सुना दिया, जो सुखप्रद, मोक्षदायक और सार रूप है। अब और क्या सुनना चाहते हो॥६२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में सुरथ-मेधस् के संवाद में सुरथ-वैश्य की अभिलषित सिद्धि का वर्णन नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त॥६२॥

अध्याय ६३

दुर्गा और वैश्य का संवाद

नारद बोले—हे नारायण, हे महाभाग, हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! राजा ने किस प्रकार परा प्रकृति (दुर्गा) की आराधना की॥१॥ समाधि नामक वैश्य ने भी किस प्रकार प्रकृति (दुर्गाजी) के उपदेश द्वारा निष्काम एवं निर्गुण व्यापक ब्रह्म की उपासना की॥२॥ महामुनि ने राजा को कौन पूजा-विधान, ध्यान, मंत्र, स्तोत्र और कवच प्रदान किया॥३॥ और दुर्गा ने वैश्य को कौन परमोत्तम ज्ञान प्रदान किया तथा किस उपाय द्वारा दुर्गा ने उन दोनों को साक्षात् दर्शन दिया॥४॥ पुनः ज्ञान प्राप्त कर उस वैश्य ने कौन दुर्लभ पद प्राप्त किया और राजा को कौन गति प्राप्त हुई (ये सब) मुझे बताने की कृपा करें॥५॥

श्री नारायण बोले—राजा और वैश्य दोनों ने मेधस् मुनि द्वारा (दुर्गा) देवी का मंत्र, स्तोत्र, कवच, और ध्यान प्राप्त कर पुष्कर क्षेत्र में उनके परम मंत्र का जप किया। तब तीनों काल स्नान-पूजा करने पर एक

---

१ ख, सहसा।

जजाप परमं मन्त्रं राजा वैश्यश्च पुष्करे। स्नात्वा त्रिकालं वर्षं च ततः सिद्धो बभूव सः ॥७॥
साक्षाद्बभूव तत्रैव मूलप्रकृतिरीश्वरी। राज्ञे ददौ राज्यवरं मनुत्वं वाञ्छितं सुखम् ॥८॥
ज्ञानं निगूढं वैश्याय ददौ चातिसुदुर्लभम्। यद्दत्तं शूलिने पूर्वं कृष्णेन परमात्मना ॥९॥
निराहारमतिक्लिष्टं दृष्ट्वा वैश्यं कृपामयी। रुरोद कृत्वा क्रोडे तमचेष्टं श्वासवर्जितम् ॥१०॥
चेतनां कुरु भो वत्सेत्युच्चार्य च पुनः पुनः। चेतनां च ददौ तस्मै स्वयं चैतन्यरूपिणी ॥११॥
संप्राप्य चेतनां वैश्यो रुरोद प्रकृतेः पुरः। तमुवाच प्रसन्नाऽसौ कृपयाऽतिकृपामयी ॥१२॥

प्रकृतिरुवाच

वरं वृणुष्व हे वत्स यत्ते मनसि वर्तते। ब्रह्मत्वममरत्वं वा ततो वाऽतिसुदुर्लभम् ॥१३॥
इन्द्रत्वं वा मनुत्वं वा सर्वसिद्धत्वमेव च। तुच्छं तुभ्यं न दास्यामि नश्वरं बालवञ्चनम् ॥१४॥

वैश्य उवाच

ब्रह्मत्वममरत्वं वा मातर्मे नहि वाञ्छितम्। ततोऽतिदुर्लभं किंवा न जाने तदभीप्सितम् ॥१५॥
त्वय्येव शरणापन्नो देहि यद्वाञ्छितं तव। अनश्वरं सर्वसारं वरं मे दातुमर्हसि ॥१६॥

प्रकृतिरुवाच

अदेयं नास्ति मे तुभ्यं दास्यामि मम वाञ्छितम्। यतो यास्यसि गोलोकं पदमेव सुदुर्लभम् ॥१७॥

वर्ष में उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई ॥ ६—७॥ उसी समय ईश्वरी (दुर्गा) मूल प्रकृति ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया। राजा को उत्तम राज्य समेत मनुत्व और अभीष्ट सुख तथा वैश्य को अत्यन्त दुर्लभ निगूढ़ ज्ञान देवी ने प्रदान किया, जो पूर्व समय परमात्मा कृष्ण ने शिव को प्रदान किया था ॥८॥ कृपामयी भगवती ने निराहार के कारण अतिक्षीणकाय वैश्य को देखकर अपनी गोद में उसे बैठा लिया और श्वास की गति रुक जाने से उसे चेतनाहीन देखकर—'हे वत्स ! चेतना (प्राप्त) करो।' ऐसा बार-बार कहकर वे रुदन करने लगीं। अनन्तर चैतन्य-स्वरूपिणी देवी ने स्वयं उसे चैतन्य प्रदान किया और वैश्य भी चेतना प्राप्त होने पर देवी के सामने रुदन करने लगा। पश्चात् अतिकृपामयी भगवती ने प्रसन्न होकर कृपापूर्वक उससे कहा ॥९—१२॥

प्रकृति बोली—हे वत्स ! अपना मनोनीत वरदान मांगो। ब्रह्मत्व या अमरत्व चाहते हो या उससे भी अतिदुर्लभ कोई अन्य वस्तु ॥१३॥ किन्तु इन्द्रत्व, मनुत्व एवं सर्वसिद्धत्व तो तुच्छ होने के नाते तुम्हें दिया नहीं जायेगा, क्योंकि वह नश्वर होने के नाते बालकों को बहकाने की वस्तु है ॥१४॥

वैश्य बोले—हे मातः ! ब्रह्मत्व और अमरत्व तो हमें अभीष्ट नहीं है। और उससे अतिदुर्लभ मनोनीत वस्तु क्या है, मैं जानता नहीं। मैं तुम्हारी ही शरणमें प्राप्त हूँ, हमें ऐसा वरदान दो जो अनश्वर एवं समस्त का साररूप हो ॥१५-१६॥

प्रकृति बोली—तुम्हारे लिए मुझे अदेय वस्तु कुछ भी नहीं है, अतः मैं अपना अभीष्ट तुम्हें दे रही हूँ, जिससे तुम अतिदुर्लभ गोलोक पद प्राप्त करोगे ॥१७॥ हे वत्स ! मैं तुम्हें समस्त का सार भाग और देवर्षियों

सर्वसारं च यज्ज्ञानं सुरर्षीणां सुदुर्लभम्। तद्गृह्यतां महाभाग गच्छ वत्स हरेः पदम्॥१८॥
स्मरणं वन्दनं ध्यानमर्चनं गुणकीर्तनम्। श्रवणं भावनं सेवा कृष्णे सर्वनिवेदनम्॥१९॥
एतदेव वैष्णवानां नवधाभक्तिलक्षणम्। जन्ममृत्युजराव्याधियमताडनखण्डनम् ॥२०॥
आयुर्हरति लोकानां रविरेव हि संततम्। नवधाभक्तिहीनानामसतां पापिनामपि॥२१॥
भक्तास्तद्गतचित्ताश्च वैष्णवाश्चिरजीविनः। जीवन्मुक्ताश्च निष्पापा जन्मादिपरिवर्जिताः॥२२॥
शिवः शेषश्च धर्मश्च ब्रह्मा विष्णुर्महान्विराट्। सनत्कुमारः कपिलः सनकश्च सनन्दनः॥२३॥
वोढुः पञ्चशिखो दक्षो नारदश्च सनातनः। भृगुर्मरीचिर्दुर्वासाः कश्यपः पुलहोऽङ्गिराः॥२४॥
मेधावी लोमशः शुक्रो वसिष्ठः क्रतुरेव च। बृहस्पतिः कर्दमश्च शक्तिरत्रिः पराशरः॥२५॥
मार्कण्डेयो बलिश्चैव प्रह्लादश्च गणेश्वरः। यमः सूर्यश्च वरुणो वायुश्चन्द्रो हुताशनः॥२६॥
अकूपार उलूकश्च नाडीजङ्घश्च वायुजः। नरनारायणौ कूर्म इन्द्रद्युम्नो विभीषणः॥२७॥
नवधाभक्तियुक्ताश्च कृष्णस्य परमात्मनः। एते महान्तो धर्मिष्ठा भक्तानां प्रवरास्तथा॥२८॥
ये तदुक्तास्ते तदंशा जीवन्मुक्ताश्च संततम्। पापापहारास्तीर्थानां पृथिव्याश्च विशां पते॥२९॥
ऊर्ध्वं च सप्त स्वर्गाश्च सप्तद्वीपा वसुंधरा। अधः सप्त च पाताला एतद्ब्रह्माण्डमेव च॥३०॥
एवंविधानां विश्वानां संख्या नास्त्येव पुत्रक। एवं च प्रतिविश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥३१॥
देवा देवर्षयश्चैव मनवो मानवादयः। सर्वाश्रमाश्च सर्वत्र सन्ति बद्धाश्च मायया॥३२॥
महाविष्णोर्लोमकूपे सन्ति विश्वानि यस्य च। स षोडशांशः कृष्णस्य चाऽऽत्मनश्च महान्विराट्॥३३॥

का अति दुर्लभ ज्ञान दे रही हूँ जिससे तुम भगवान् के लोक में जाओगे॥१८॥ भगवान् का स्मरण, वन्दन, ध्यान, अर्चन, गुणगान, श्रवण, मनन, सेवा और उन्हें समस्त निवेदन करना, यही वैष्णवों का नव प्रकार का भक्तिलक्षण है, जो जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और यमदण्ड का नाशक है॥१९-२०॥ इस नवधा भक्ति से रहित असज्जनों एवं पापी लोगों की भी आयु का अपहरण सूर्य नित्य किया करते हैं॥२१॥ भक्त वैष्णव लोग, जो भगवान् में तन्मय रहते हैं, चिरायु, जीवन्मुक्त, पापरहित एवं जन्म आदि से शून्य होते हैं॥२२॥ शिव, शेष, धर्म, ब्रह्मा, विष्णु, महाविराट्, सनत्कुमार, कपिल, सनक, सनन्दन, वोढु, पञ्चशिख, दक्ष, नारद, सनातन, भृगु, मरीचि, दुर्वासा, कश्यप, पुलह, अंगिरा, मेधावी, लोमश, शुक्र, वसिष्ठ, बृहस्पति, कर्दम, शक्ति, अत्रि, पराशर, मार्कण्डेय, बलि, प्रहलाद, गणेश्वर, यम, सूर्य, वरुण, वायु, चन्द्र, अग्नि, अकूपार, उलूक, नाडीजंघ, वायुपुत्र (हनुमान्), नर और नारायण, कूर्म, इन्द्रद्युम्न और विभीषण, ये सब परमात्मा श्रीकृष्ण की नवधा भक्ति से सम्पन्न हैं, जो महान् धर्मिष्ठ, एवं भक्तप्रवर हैं॥२३-२८॥ हे विशांपते! जो उनके भक्त हैं, वे उनके अंश होने के नाते निरन्तर जीवन्मुक्त और पृथिवी के समस्त तीर्थों के पापापहारी हैं॥२९॥ ऊपर के स्वर्ग आदि सात लोक, मध्य के सातों द्वीप और नीचे के पाताल आदि सातों लोक यही (मिलकर) 'ब्रह्माण्ड' कहलाता है॥३०॥ हे पुत्र! ऐसे विश्वों की संख्या नहीं है, और प्रत्येक विश्व में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि देवता पृथक्-पृथक् रहते हैं॥३१॥ और सभी विश्व के देव, ऋषि, मनु, मानव आदि और सभी आश्रम माया से आबद्ध हैं॥३२॥ जिस महाविष्णु के लोमकूप में समस्त विश्व निहित हैं, वह महाविराट् परमात्मा श्रीकृष्ण का सोलहवाँ अंश है॥३३॥ इसलिए सत्यरूप,

भज सत्यं परं ब्रह्म नित्यं निर्गुणमच्युतम्। प्रकृतेः परमीशानं कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥३४॥
निरीहं च निराकारं निर्विकारं निरञ्जनम्। निष्कामं निर्विरोधं च नित्यानन्दं सनातनम् ॥३५॥
स्वेच्छामयं सर्वरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम्। तेजः स्वरूपं परमं दातारं सर्वसंपदाम् ॥३६॥
ध्यानासाध्यं दुराराध्यं शिवादीनां च योगिनाम्। सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वेषां सर्वकामदम् ॥३७॥
सर्वाधारं च सर्वज्ञं सर्वानन्दकरं परम्। सर्वधर्मप्रदं सर्वं सर्वज्ञं प्राणरूपिणम् ॥३८॥
सर्वधर्मस्वरूपं च सर्वकारणकारणम्। सुखदं मोक्षदं सारं पररूपं च भक्तिदम् ॥३९॥
दास्यदं धर्मदं चैव सर्वसिद्धिप्रदं सताम्। सर्वं तदतिरिक्तं च नश्वरं कृत्रिमं सदा ॥४०॥
परात्परतरं शुद्धं परिपूर्णतमं शिवम्। यथासुखं गच्छ वत्स भगवन्तमधोक्षजम् ॥४१॥
कृष्णेति द्व्यक्षरं मन्त्रं गृहीत्वा कृष्णदास्यदम्। पुष्करं दुष्करं गत्वा दशलक्षमिमं जप ॥४२॥
दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तव। इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवान्तरधीयत ॥४३॥
वैश्यो नत्वा च तां भक्त्या चागमत्पुष्करं मुने। पुष्करे दुस्तरे तप्त्वा स लेभे कृष्णमीश्वरम् ॥
भगवत्याः प्रसादेन कृष्णदासो बभूव सः ॥४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० सुरथसमाधिमेधः सं०
प्रकृतिवैश्यसंवादकथनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

परब्रह्म, नित्य, निर्गुण, अच्युत, प्रकृति-से परे, ईशान, परमात्मा श्रीकृष्ण को भजो, जो ईश्वर, ईहारहित, आकाररहित, निर्विकार, निरञ्जन, निष्काम, निर्विरोध, नित्यानन्द, सनातन, स्वेच्छामय, सर्वरूप, भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीरधारी, तेजःस्वरूप, समस्त सम्पत्ति के प्रदाता, शिव आदि योगियों के लिए भी ध्यान से असाध्य एवं दुराराध्य, सभी के ईश्वर, सबके पूज्य, सब की समस्त कामनायें पूरी करने वाले, सर्वाधार, सर्वज्ञाता, सर्वानन्दकारी, श्रेष्ठ, सभी धर्मों के प्रदायक, सर्वस्वरूप, सर्वज्ञ, प्राणरूप, समस्त धर्मों के स्वरूप, समस्त कारणों के कारण, सुखदायक, मोक्षप्रद, सारभाग, श्रेष्ठरूप भक्ति, दास्य और धर्म के दाता, सज्जनों को सभी सिद्धि देने वाले हैं तथा उनके अतिरिक्त सब वस्तुएँ सदा नश्वर एवं कृत्रिम हैं ॥३४-४०॥ हे वत्स ! भगवान् कृष्ण को आनन्दपूर्वक प्राप्त करो, जो पर से भी अत्यन्त परे, शुद्ध, परिपूर्णतम तथा शिव (कल्याण) रूप हैं॥४१॥ 'कृष्ण' इस दो अक्षर वाले मंत्र को प्राप्त कर, जो भगवान् श्रीकृष्ण की दास्यभक्ति देनेवाला है, दुष्कर पुष्कर तीर्थ में जाकर इसका दशलक्ष जप करो॥४२॥ दशलक्ष जप करने से तुम्हारी मंत्रसिद्धि हो जायगी। इतना कहकर वह भगवती उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गयी॥४३॥ हे मुने ! अनन्तर वह वैश्य देवी को नमस्कार करके पुष्कर क्षेत्र में आया और वहाँ दुष्कर तप करके ईश्वर श्रीकृष्ण को प्राप्त किया। भगवती के प्रसाद से वह (वैश्य) भगवान् श्रीकृष्ण का दास हो गया॥४४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में सुरथ, समाधि एवं मेधस् के संवाद में प्रकृति और वैश्य का संवाद कथन नामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६३॥

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

नारायण उवाच

राजा येन क्रमेणैव भेजे तां प्रकृतिं पराम्। तच्छ्रूयतां महाभाग वेदोक्तं क्रममेव च ॥१॥
स्नात्वाऽऽचम्य महाराजः कृत्वा न्यासत्रयं तदा। स्वकराङ्गाङ्गमन्त्राणां भूतशुद्धिं चकार सः ॥२॥
प्राणायामं ततः कृत्वा कृत्वा च स्वाङ्गशोधनम्। ध्यात्वा देवीं च मृन्मय्यां चकाराऽऽवाहनं तदा ॥३॥
पुनर्ध्यात्वा च भक्त्या च पूजयामास भक्तितः। देव्याश्च दक्षिणे भागे संस्थाप्य कमलालयाम् ॥४॥
संपूज्य भक्तिभावेन भक्त्या परमधार्मिकः। देवषट्कं समावाहच्य देव्याश्च पुरतो घटे ॥५॥
भक्त्या च पूजयामास विधिपूर्वं च नारद। गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ॥६॥
देवषट्कं च संपूज्य नमस्कृत्य विचक्षणः। तदा ध्यायेन्महादेवीं ध्यानेनानेन भक्तितः ॥७॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं परं कल्पतरुं मुने। ध्यायेन्नित्यं महादेवीं मूलप्रकृतिरीश्वरीम् ॥८॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां पूज्यां वन्द्यां सनातनीम्। नारायणीं विष्णुमायां वैष्णवीं विष्णुभक्तिदाम् ॥९॥
सर्वस्वरूपां सर्वेशां सर्वाधारां परात्पराम्। सर्वविद्यासर्वमन्त्रसर्वशक्तिस्वरूपिणीम् ॥१०॥
सगुणां निर्गुणां सत्यां वरां स्वेच्छामयीं सतीम्। महाविष्णोश्च जननीं कृष्णस्यार्धाङ्गसंभवाम् ॥११॥
कृष्णप्रियां कृष्णशक्तिं कृष्णबुद्ध्यधिदेवताम्। कृष्णस्तुतां कृष्णपूज्यांकृष्णवन्द्यां कृपामयीम् ॥१२॥

अध्याय ६४

पूजाविधि और बलिदान के पशु का लक्षण कथन

नारायण बोले—हेमहाभाग! राजा ने जिस क्रमानुसार उस देवी की उपासना की, उस वेदोक्त क्रम को मैं बता रहा हूँ, सुनो ॥१॥ स्नान-आचमन करके महाराज ने तीनों न्यास—करन्यास, हृदयन्यास और अंगन्यास—को उनके मंत्रोच्चारण पूर्वक समाप्त कर भूतशुद्धि की ॥२॥ अनन्तर प्राणायाम और अपने अंगों का शोधन करके ध्यान समेत देवी का मिट्टी की मूर्ति में आवाहन किया ॥३॥ पुनः भक्तिपूर्वक ध्यान-पूजन करके उनके दक्षिण भाग में कमला (लक्ष्मी) को स्थापित किया और भक्तिभावना से उनकी पूजा करके उस परम धार्मिक राजा ने देवी के सामने घट में छहों देवों का आवाहन किया ॥४-५॥ हे नारद! भक्तिपूर्वक राजा ने गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और शिवा (पार्वती) की सविधि अर्चना सम्पन्न की ॥६॥ छहों देवों को नमस्कार-पूर्वक अर्चना करके उस बुद्धिमान् राजा ने इसी ध्यान द्वारा भक्तिपूर्वक महादेवी का ध्यान किया ॥७॥ हे मुने! वह ध्यान सामवेदानुसार एवं परम कल्पतरु रूप है—महादेवी का मैं नित्य ध्यान करता हूँ, जो मूलप्रकृति, ईश्वरी, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवादि देवों की पूज्या, वन्दनीया एवं सनातनी, नारायणी, विष्णु की माया, वैष्णवी, विष्णु-भक्तिप्रदा, सबका स्वरूप, सबका आधार, परात्परा, समस्त विद्या, समस्त मन्त्र और समस्त शक्तिस्वरूपिणी, सगुण, निर्गुण, सत्यस्वरूपा, श्रेष्ठा, स्वेच्छामयी, सती, महाविष्णु को उत्पन्न करनेवाली, भगवान् श्रीकृष्ण की आधी देह से उत्पन्न, कृष्ण की प्रिया, उनकी शक्ति, उनकी बुद्धि की अधिदेवता, कृष्ण से स्तुत, उनसे पूजिता, उनकी वन्द्या और

तप्तकाञ्चनवर्णाभां कोटिसूर्यसमप्रभाम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारिकाम् ॥१३॥
दुर्गां शतभुजां देवीं महद्दुर्गतिनाशिनीम्। त्रिलोचनप्रियां साध्वीं त्रिगुणां च त्रिलोचनाम् ॥१४॥
त्रिलोचनप्राणरूपां शुद्धार्धचन्द्रशेखराम्। बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम् ॥१५॥
वर्तुलं वामववत्रं च शंभोर्मानसमोहिनीम्। रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम् ॥१६॥
नासादक्षिणभागेन बिभ्रतीं गजमौक्तिकम्। अमूल्यरत्नं बहुलं बिभ्रतीं श्रवणोपरि ॥१७॥
मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिसुशोभिताम्। पक्वबिम्बाधरोष्ठीं च सुप्रसन्नां सुमङ्गलाम् ॥१८॥
चित्रपत्रावलीरम्यकपोलयुगलोज्ज्वलाम्। रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जिताम् ॥१९॥
रत्नकङ्कणभूषाढ्यां रत्नपाशकशोभिताम्। रत्नाङ्गुलीयनिकरैः कराङ्गुलिचयोज्ज्वलाम् ॥२०॥
पदाङ्गुलिनखालक्तालक्तारेखासुशोभनाम्। वह्निशुद्धांकाधानां गन्धचन्दनचर्चिताम् ॥२१॥
बिभ्रतीं स्तनयुग्मं च कस्तूरीबिन्दुशोभितम्। सर्वरूपगुणवतीं गजेन्द्रमन्दगामिनीम् ॥२२॥
अतीव कान्तां शान्तां च नितान्तां योगसिद्धिषु। विधातुश्च विधात्रीं च सर्वधात्रीं च शंकरीम् ॥२३॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यामतीव सुमनोहराम्। कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना ॥२४॥

कृपामयी हैं ॥८-१२॥ तपाये हुए सुवर्ण के समान रूपरंग, करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण, मन्दहासयुक्त प्रसन्न मुख, भक्तों पर अनुग्रह करने वाली, सौ भुजा वाली दुर्गा देवी को, जो महादुर्गति की नाशिनी, त्रिलोचन (शिव) की प्रिया, सती, त्रिगुणा, तीन नेत्रवाली, त्रिलोचन (शिव) की प्राणरूप, चन्द्रशेखर की शुद्ध अर्द्धांगिनी, मालती माला से सुशोभित कबरीभार (केशपाश) को धारण करने वाली, गोलाकार सुन्दर मुख, शम्भु की मन-मोहिनी तथा रत्नों के युगल कुण्डलों से विभूषित कपोल वाली हैं ॥१३-१६॥ नासिका के दाहिने भाग में गजमुक्ता से सुशोभित, अमूल्य रत्न के अनेक भूषण कानों में धारण किये हुई, मोतियों की पंक्तियों को निन्दित करनेवाली दाँतों की पंक्तियों से सुशोभित, पके बिम्बाफल के समान ओष्ठवाली, अत्यन्त प्रसन्न, अतिमंगलमयी, चित्र विचित्र पत्रावलियों से युक्त रमणीक युगल कपोल से समुज्ज्वल, रत्नों के केयूर (बहूँटा), वलय (कड़ा) और रत्नों के नूपुरों से विभूषित, रत्नों के कंकण आदि भूषणों से अलंकृत और रत्नों के पाशक (चूड़ामणि) से सुशोभित हैं। एवं रत्नों की अंगूठियों के समूहों से देदीप्यमान हाथ की अंगुलियों वाली, नखों में लगे हुए अलते की रेखा से सुशोभित, अग्नि की भाँति विशुद्ध वस्त्र पहने, तथा सुगन्धित चन्दन से चर्चित हैं ॥१७-२१॥ कस्तूरी की बिन्दी से विभूषित युगल स्तन धारण किये हुई, सबसे सुन्दर एवं गुणवती, गजेन्द्र की भाँति मन्द-मन्द गमन करने वाली, अतीव कमनीय, शान्तस्वरूप, योगसिद्धि में नितान्त लगी रहने वाली, विधाता (ब्रह्मा) की विधात्री और सबका धारण करने वाली शंकरी (पार्वती) हैं ॥२३॥ शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख वाली, अत्यंत मनोहारिणी, कस्तूरी की बिन्दी के साथ नीचे चन्दन बिन्दु और सिन्दूर-बिन्दी से निरन्तर अंकित भाल के मध्यस्थल से समुज्ज्वल, शरत्कालीन

सिन्दूरबिन्दुना शश्वद्भालमध्यस्थलोज्ज्वलाम् । शरन्मध्याह्नकमलप्रभामोचनलोचनाम् ॥२५॥
चारुकज्जलरेखाभ्यां सर्वतश्च समुज्ज्वलाम् । कोटिकन्दर्पलावण्यलीलानिन्दितविग्रहाम् ॥२६॥
रत्नसिंहासनस्थां च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलाम् । सृष्टौ स्त्रष्टुः शिल्परूपां दयां पातुश्च पालने ॥२७॥
संहारकाले संहर्तुः परां संहाररूपिणीम् । निशुम्भशुम्भमथिनीं महिषासुरमर्दिनीम् ॥२८॥
पुरा त्रिपुरयुद्धे च संस्तुतां त्रिपुरारिणा । मधुकैटभयोर्युद्धे विष्णुशक्तिस्वरूपिणीम् ॥२९॥
सर्वदैत्यनिहन्त्रीं च रक्तबीजविनाशिनीम् । नृसिंहशक्तिरूपां च हिरण्यकशिपोर्वधे ॥३०॥
वराहशक्तिं वाराहे हिरण्याक्षवधे तथा । परब्रह्मस्वरूपां च सर्वशक्तिं सदा भजे ॥३१॥
इति [1]ध्यात्वा च दुर्गायै पुष्पं दत्त्वा विचक्षणः । पुनर्ध्यात्वा चैव भक्त्या कुर्यादावाहनं ततः ॥३२॥
प्रकृतेः प्रतिमां धृत्वा मन्त्रमेवं पठेन्नरः । जीवन्यासं ततः कुर्यान्मिनुनाऽनेन यत्नतः ॥३३॥
एह्येहि भगवत्यम्ब शिवलोकात्सनातनि । गृहाण मम पूजां च शारदीयां सुरेश्वरि ॥३४॥
इहाऽऽगच्छ जगत्पूज्ये तिष्ठ तिष्ठ महेश्वरि । हे मातरस्यामर्चायां संनिरुद्धा भवाम्बिके ॥३५॥
इहाऽऽगच्छन्तु त्वत्प्राणाश्चाऽऽधिप्राणैः सहाच्युते । इहाऽऽगच्छन्तु त्वरितं तवैव सर्वशक्तयः ॥३६॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं च दुर्गायै वह्निजायान्तमेव च । समुच्चार्योरसि प्राणाः संतिष्ठन्तु सदा शिवे ॥३७॥

मध्याह्न कमल की प्रभा से युक्त नेत्रों वाली, काजल की सुन्दर रेखाओं से चारों ओर समुज्ज्वल, करोड़ों कामदेव के लावण्य को लीलापूर्वक तिरस्कृत करने वाले शरीर वाली, रत्नसिंहासन पर विराजित, उत्तम रत्नों के मुकुटों से देदीप्यमान, स्त्रष्टा (ब्रह्मा) की सृष्टि में शिल्प (सृष्टि) रूप, पाता (विष्णु) के पालन में दयारूप और संहर्त्ता (शिव) के संहार-काल में महासंहार-रूपिणी निशुम्भ, शुम्भ को मथने वाली एवं महिषासुर का मर्दन करने वाली हैं ॥२४-२८॥ पूर्वकाल में त्रिपुर युद्ध के समय त्रिपुरारि (शिव) द्वारा संस्तुत हैं और मधुकैटभ के युद्ध में विष्णु-शक्तिस्वरूपिणी हैं ॥२९॥ समस्त दैत्यों का हनन करने वाली, रक्तबीज की नाशिनी एवं हिरण्यकशिपु के वध में नृसिंहशक्तिरूप, हिरण्याक्ष-वध में वाराह भगवान् की वाराह शक्तिरूप तथा परब्रह्म स्वरूप समस्त शक्तिवाली (दुर्गा) को मैं सदा भजता हूँ ॥३०-३१॥ इस प्रकार ध्यान कर बुद्धिमान् पुरुष, अपने शिर पर पुष्प रखे, भक्तिपूर्वक पुनः ध्यान करके देवी का आवाहन करे ॥३२॥ अनन्तर देवी की प्रतिमा को पकड़ कर यह मंत्र पढ़ना चाहिए और इसी मंत्र द्वारा उसे सप्रयत्न जीवन्यास भी करना चाहिए ॥३३॥ हे भगवति, हे अम्ब! हे सनातनि, हे सुरेश्वरि, आप शिवलोक से यहां आकर मेरी यह शारदीय पूजा स्वीकार करें ॥३४॥ हे जगत्पूज्ये! महेश्वरि! यहाँ आकर सुखासीन हों। हे मातः! हे अम्बिके! इस पूजन में रुकी रहें ॥३५॥ हे अच्युते! इस पूजन में अधिप्राणों के साथ तुम्हारे प्राण आयें और तुम्हारी सभी शक्तियाँ यहाँ शीघ्र पधारें ॥३६॥ हे सदाशिवे! 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं दुर्गायै स्वाहा' इस मंत्र का उच्चारण कर कहे—'हे शिवे! मेरे हृदय में प्राण सदा संस्थित हों ॥३७॥ हे चण्डिके! समस्त इन्द्रियों

१ख. ० त्वा स्वशिरसि पु० ।

सर्वेन्द्रियाधिदेवास्त इहाऽऽगच्छन्तु चण्डिके । ते शक्तयोऽत्राऽऽगच्छन्तु इहाऽऽच्छन्तु ईश्वराः ॥३८॥
इत्यावाह्य महादेवीं परीहारं करोति च । मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र तच्छृणुष्व समाहितः ॥३९॥
स्वागतं भगवत्यम्ब शिवलोकाच्छिवप्रिये । प्रसादं कुरु मां भद्रे भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥४०॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम । आगताऽसि यतो दुर्गे माहेश्वरि मदालयम् ॥४१॥
अद्य मे सफलं जन्म सार्थकं जीवनं मम । पूजयामि यतो दुर्गां पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥४२॥
भारते भवतीं पूज्यां दुर्गां यः पूजयेद्बुधः । सोऽन्ते याति च गोलोकं परमैश्वर्यवानिह ॥४३॥
कृत्वा च वैष्णवीपूजां विष्णुलोकं व्रजेत्सुधीः । माहेश्वरीं च संपूज्य शिवलोकं च गच्छति ॥४४॥
सात्त्विकी राजसी चैव त्रिधा पूजा च तामसी । भगवत्याश्च वेदोक्ता चोत्तमा मध्यमाऽधमा ॥४५॥
सात्त्विकी वैष्णवानां च शाक्तादीनां च राजसी । अदीक्षितानामसतामन्येषां तामसी स्मृता ॥४६॥
जीवहत्याविहीना या वरा पूजा तु वैष्णवी । वैष्णवा यान्ति गोलोकं वैष्णवीबलिदानतः ॥४७॥
माहेश्वरी राजसी च बलिदानसमन्विता । शाक्तादयो राजसाश्च कैलासं यान्ति ते तथा ॥४८॥
किरातास्त्रिदिवं यान्ति तामस्या पूजया तया । त्वमेव जगतां माता चतुर्वर्गफलप्रदा ॥४९॥
सर्वशक्तिस्वरूपा च कृष्णस्य परमात्मनः
जन्ममृत्युजराव्याधिहरा त्वं च परात्परा । सुखदा मोक्षदा भद्रा कृष्णभक्तिप्रदा सदा ॥५०॥

के अधीश्वरदेव यहाँ आयें । हे चण्डिके ! तुम्हारी शक्तियाँ तथा ईश्वर यहाँ आयें ॥३८॥ हे विप्रेन्द्र ! इस प्रकार महादेवी का आवाहन करके इसी मंत्र से परीहार करना चाहिए, उसे कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ॥३९॥ हे भगवति ! हे अम्ब ! हे शिवप्रिये ! शिवलोक से आओ, तुम्हारा स्वागत है। हे भद्रे ! मेरे ऊपर कृपा करो। हे भद्रकालि ! तुम्हें नमस्कार है॥४०॥ हे दुर्गे ! हे माहेश्वरि ! आज हम धन्य हैं, कृतकृत्य हैं, मेरा जीवन सफल हो गया क्योंकि मेरे गृह में आपका आगमन हुआ है॥४१॥ आज मेरा जन्म सफल है, मेरा जीवन सार्थक हो गया क्योंकि इस पुण्यक्षेत्र भारत में मैं दुर्गाजी की पूजा कर रहा हूँ॥४२॥ जो इस भारत में पूज्य दुर्गा जी की अर्चना करता है, वह विद्वान् परम ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर अन्त में गोलोक प्राप्त करता है॥४३॥ विद्वान् को वैष्णवी की पूजा करने पर विष्णुलोक की प्राप्ति होती है और माहेश्वरी की आराधना करने पर शिवलोक को वह जाता है ॥४४॥ भगवती की वेदोक्त अर्चना सात्त्विकी, राजसी और तामसी भेद से उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार की होती है ॥४५॥ उसमें वैष्णवों की सात्त्विकी, शाक्त आदि लोगों की राजसी और दीक्षाहीन असज्जन एवं अन्य लोगों के लिए तामसी पूजा बतायी गयी है॥४६॥ जीवहत्या विहीन होने के नाते वैष्णवी पूजा श्रेष्ठ बतायी गयी है, वैष्णवी बलि द्वारा वैष्णवों को गोलोक प्राप्त होता है ॥४७॥ माहेश्वरी की राजसी अर्चना और बलि प्रदान करने से राजस शाक्त आदि कैलास की यात्रा करते हैं और किरातगण तामसी देवी की आराधना द्वारा स्वर्ग प्राप्त करते हैं । चतुर्वर्ग (धर्म अर्थ , काम और मोक्ष) फल प्रदान करने वाली तुम्हीं जगत् की माता हो॥४८-४९॥ तुम परमात्मा श्रीकृष्ण की सर्वशक्ति रूप हो, जो जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधि का नाश करने वाली, पर से भी श्रेष्ठ, सुख देने वाली, मोक्ष देने वाली, कल्याणरूपा तथा सदा कृष्णभक्तिदायिका हो ॥५०॥

नारायणि महामाये दुर्गे दुर्गतिनाशिनि। दुर्गेति स्मृतिमात्रेण याति दुर्गं नृणामिह॥५१॥
इति कृत्वा परीहारं देव्या वामे च साधकैः। त्रिपद्या उपरिष्टात्तु शङ्खं संस्थापयेत्तु सः॥५२॥
तत्र दत्त्वा जलं पूर्णं दूर्वां पुष्पं च चन्दनम्। धृत्वा दक्षिणहस्तेन मन्त्रमेवं पठेन्नरः॥५३॥
पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम्। प्रभूतः शङ्खचूडात्त्वं पुराकल्पे पवित्रकः॥५४॥
ततोऽर्घ्यपात्रं संस्थाप्य विधिनाऽनेन पण्डितः। दत्त्वा संपूजयेद्देवीमुपचाराणि षोडश॥५५॥
त्रिकोणमण्डलं कृत्वा सजलेन कुशेन च। कूर्मं शेषं धरित्रीं च पूजयेत्तत्र धार्मिकः॥५६॥
त्रिपदीं स्थापयेत्तत्र त्रिपद्यां शङ्खमेव च। शङ्खे त्रिभागतोयं च दत्त्वा संपूजयेत्ततः॥५७॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि चन्द्रभागे च कौशिकि॥५८॥
स्वर्णरेखे कनखले पारिभद्रे च गण्डकि। श्वेतगङ्गे चन्द्ररेखे पम्पे चम्पे च गोमति॥५९॥
पद्मावति त्रिपर्णाशे विपाशे विरजे प्रभे। शतह्रदे चेलगङ्गे जलेऽस्मिन्संनिधिं कुरु॥६०॥
वह्निं सूर्यं च चन्द्रं च विष्णुं च वरुणं शिवम्। पूजयेत्तत्र तोये च तुलस्या चन्दनेन च॥६१॥
नैवेद्यानि च सर्वाणि प्रोक्षयेत्तज्जलेन च। प्रत्येकं वै ततो दद्यादुपचारांश्च षोडश॥६२॥
आसनं वसनं पाद्यं स्नानीयमनुलेपनम्। मधुपर्कं गन्धमर्घ्यं पुष्पं नैवेद्यमीप्सितम्॥६३॥
पुनराचमनीयं च ताम्बूलं रत्नभूषणम्। धूपं प्रदीपं तल्पं चेत्युपचारास्तु षोडश॥६४॥

॥५०॥ हे नारायणि! हे महामाये! हे दुर्गे! हे दुर्गतिनाशिनि! इस प्रकार दुर्गा के स्मरण मात्र से मनुष्यों का दुर्ग (कठिन) दुःख नष्ट हो जाता है॥५१॥ इस प्रकार साधक को देवी के बाँयें भाग में परीहार करके त्रिपदी (पीतल की बनी हुई तीन पैर की बैठकी) पर शंख स्थापित करना चाहिए, जिसमें दूर्वा, पुष्प और चन्दन समेत जल भरा हो उसे दाहिने हाथ से पकड़ कर यह मंत्र पढ़े—हे शंख! तुम पुण्यों के पुण्य और मंगलों के मंगल हो। हे पवित्रक! पूर्व कल्प में तुम शंखचूड़ द्वारा उत्पन्न हुए हो॥५२-५४॥ पश्चात् पण्डित को चाहिए कि इसी विधि के द्वारा अर्घ्यपात्र स्थापित कर देवी का षोडशोपचार पूजन करें॥५५॥एवं कुश-जल समेत त्रिकोण मण्डल बनाकर उसमें कच्छप, शेष और पृथिवी का पूजन धार्मिक को करना चाहिए॥५६॥ पुनः त्रिपदी (तिपायी) रखकर उस पर शंख रखे, जिसमें तीन भाग जल रखकर अर्चना करे—हे गंगे! हे यमुने! हे गोदावरि! हे सरस्वति! हे नर्मदे! हे सिन्धु! हे कावेरि! हे चन्द्रभागे! हे कौशिकी! हे स्वर्णरेखे! हे कनखले! हे पारिभद्रे! हे गण्डकि! हे श्वेतगंगे! हे चन्द्ररेखे! हे पम्पे! हे चम्पे! हे गोमति! हे पद्मावति! हे त्रिपर्णाशे! हे विपाशे! हे विरजे! हे प्रभे! हे शतह्रदे! हे चेलगंगे! इस जल में आवास करो॥५७-६०॥ अनन्तर उस जल में तुलसी और चन्दन द्वारा अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु, वरुण, शिव की पूजा करे और उसी जल द्वारा सभी नैवेद्य का प्रक्षालन करे॥६१॥ पुनः प्रत्येक देव की सोलह उपचार से अर्चना करे—आसन, वस्त्र, पाद्य, स्नानीय जल, अनुलेपन, मधुपर्क, गन्ध, अर्घ्य, पुष्प, मनोनीत नैवेद्य, आचमनीय जल, ताम्बूल, रत्नभूषण, धूप, प्रदीप, और शय्या यही सोलह उपचार हैं॥६२-६४॥ हे शंकरप्रिये! अमूल्य रत्नों से खचित और अनेक

अमूल्यरत्नसंकल्पं नानाचित्रविराजितम्। वरं सिंहासनश्रेष्ठं गृह्यतां शंकरप्रिये॥६५॥
अनन्तसूत्रप्रभवमीश्वरेच्छाविनिर्मितम्। ज्वलदग्निविशुद्धं च वसनं गृह्यतां शिवे॥६६॥
अमूल्यरत्नपात्रस्थं निर्मलं जाह्नवीजलम्। पादप्रक्षालनार्थाय दुर्गे देवि प्रगृह्यताम्॥६७॥
सुगन्धामलकीस्निग्धद्रवमेतत्सुदुर्लभम्। सुपक्वं विष्णुतैलं च गृह्यतां परमेश्वरि॥६८॥
कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च सुगन्धिद्रुतचन्दनम्। सुवासितं जगन्मातर्गृह्यतामनुलेपनम्॥६९॥
माध्वीकं रत्नपात्रस्थं सुपवित्रं सुमङ्गलम्। मधुपर्कं महादेवि गृह्यतां प्रीतिपूर्वकम्॥७०॥
सुगन्धमूलचूर्णं च सुगन्धद्रव्यसंयुतम्। सुपवित्रं मङ्गलार्हं देवि गन्धं गृहाण मे॥७१॥
पवित्रं शङ्खपात्रस्थं दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम्। स्वर्गमन्दाकिनीतोयमर्घ्यं चण्डि गृहाण मे॥७२॥
सुगन्धिपुष्पश्रेष्ठं च पारिजाततरूद्भवम्। नानापुष्पादिमाल्यानि गृह्यतां जगदम्बिके॥७३॥
दिव्यं सिद्धान्नमामान्नं[1] पिष्टकं पायसादिकम्। मिष्टान्नं लड्डुकफलं नैवेद्यं गृह्यतां शिवे॥७४॥
सुवासितं शीततोयं कर्पूरादिसुसंस्कृतम्। मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां शैलकन्यके॥७५॥
गुवाकपर्णचूर्णं च कर्पूरादिसुवासितम्। सर्वभोगवरं रम्यं ताम्बूलं देवि गृह्यताम्॥७६॥
अमूल्यरत्नसारैश्च खचितं चेश्वरेच्छया। सर्वाङ्गशोभनकरं भूषणं देवि गृह्यताम्॥७७॥

भाँति के चित्रों से सुशोभित यह श्रेष्ठ एवं सुन्दर सिंहासन ग्रहण करो॥६५॥ हे शिवे! अनन्त सूत्रों से रचित, ईश्वर की इच्छा से बना हुआ और प्रज्वलित अग्नि की भाँति विशुद्ध इस वस्त्र को अपनाने की कृपा करो॥६६॥ हे दुर्गे देवि! अमूल्य रत्न के पात्र में स्थित एवं निर्मल इस गंगाजल को चरण प्रक्षालन के लिए स्वीकार करो॥६७॥ हे परमेश्वरि! सुगन्ध मिश्रित आँवले के रस से अत्यन्त पकाया हुआ यह अतिदुर्लभ विष्णुतैल स्वीकार करो। ॥६८॥ हे जगन्मातः! कस्तूरी, कुंकुम से आर्द्र और सुगन्धित चन्दन से सुवासित यह अनुलेपन ग्रहण करो॥६९॥ हे महादेवि! मधु का बना, रत्न के पात्र में स्थित, पवित्र एवं अतिमंगल रूप यह मधुपर्क प्रीतिपूर्वक ग्रहण करो॥७०॥ हे देवि! सुगन्ध के मूल का चूर्ण एवं सुगन्धित द्रव्य से युक्त, अति पवित्र और मंगलमय गन्ध को ग्रहण करो॥७१॥ हे चण्डि! शंखपात्र में स्थित, दूर्वा, पुष्प एवं अक्षतयुक्त स्वर्ग की मन्दाकिनी (गंगा) जल का अर्घ्य ग्रहण करो॥७२॥ हे जगदम्बिके! पारिजात के सुगन्धित तथा उत्तम पुष्प एवं अनेक पुष्पों आदि से बनी हुई मालाओं को स्वीकार करो॥७३॥ हे शिवे! दिव्य सिद्धान्न, कच्चा अन्न, पीठी तथा पायस आदि समेत लड्डू आदि मिष्टान्न नैवेद्य को ग्रहण करो॥७४॥ हे शैलकन्ये! सुवासित और कपूर आदि से सुसंस्कृत यह शीतल जल भक्तिपूर्वक तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करो॥७५॥ हे देवि! सुपारी के पत्ते के चूर्ण से मिश्रित, कर्पूर आदि से सुवासित, सब भोगों में श्रेष्ठ इस रम्य ताम्बूल को ग्रहण करो॥७६॥ हे देवि! ईश्वरेच्छया अमूल्य रत्नों के सारभाग से खचित और सर्वांग को सुशोभित करने वाले इस आभूषण को स्वीकार करो॥७७॥ हे देवि! वृक्ष के गोंद के चूर्ण, सुगन्धित वस्तु

---

१ क. ०माषान्नं।

तरुनिर्यासचूर्णं च गन्धवस्तुसमन्वितम् । हुताशनशिखाशुद्धं धूपं च देवि गृह्यताम् ॥७८॥
दिव्यरत्नविशेषं च सान्द्रध्वान्तनिवारकम् । सुपवित्रं प्रदीपं च गृह्यतां परमेश्वरि ॥७९॥
रत्नसारगणाकीर्णं दिव्यं पर्यङ्कमुत्तमम् । सूक्ष्मवस्त्रैश्च संस्यूतं देवि तल्पं प्रगृह्यताम् ॥८०॥
एवं संपूज्य तां दुर्गां दद्यात्पुष्पाञ्जलिं मुने । ततोऽष्टनायिकादेवीर्यत्नतः परिपूजयेत् ॥८१॥
उग्रचण्डां प्रचण्डां च चण्डोग्रां चण्डनायिकाम् । अतिचण्डां च चामुण्डां चण्डां चण्डवतीं तथा ॥८२॥
पद्मे चाष्टदले चैताः प्रागादिक्रमतस्तथा । पञ्चोपचारैः संपूज्य भैरवान्मध्यदेशतः ॥८३॥
आदौ महाभैरवं च तथा संहारभैरवम् । असिताङ्गं भैरवं च रुरुभैरवमेव च ॥८४॥
कालभैरवमप्येवं क्रोधभैरवमेव च । ताम्रचूडं चन्द्रचूडमन्ते वै भैरवद्वयम् ॥८५॥
एतान्संपूज्य मध्ये वै नवशक्तीश्च पूजयेत् । तत्र पद्मे चाष्टदले मध्ये वै भक्तिपूर्वकम् ॥८६॥
ब्रह्माणीं वैष्णवीं चैव रौद्रीं माहेश्वरीं तथा । नारसिंहीं च वाराहीमिन्द्राणीं कार्तिकीं[1] तथा ॥८७॥
सर्वशक्तिस्वरूपां च प्रधानां सर्वमङ्गलाम् । नवशक्तीश्च संपूज्य घटे देवांश्च पूजयेत् ॥८८॥
शंकरं कार्तिकेयं च सूर्यं सोमं हुताशनम् । वायुं च वरुणं चैव देव्याश्चेटीं बटुं तथा ॥८९॥
चतुःषष्टि योगिनीनां संपूज्य विधिपूर्वकम् । यथाशक्ति बलिं दत्त्वा करोति स्तवनं बुधः ॥९०॥
कवचं च गले बध्वा पठित्वा भक्तिपूर्वकम् । ततः कृत्वा परीहारं नमस्कुर्याद्विचक्षणः ॥९१॥

मिश्रित एवं अग्नि की शिखा से शुद्ध इस धूप को ग्रहण करो ॥७८॥ हे परमेश्वरि ! दिव्य एवं रत्न विशेष द्वारा रचित तथा घने अन्धकार का नाशक यह अति पवित्र दीप ग्रहण करें ॥७९॥ हे देवि ! रत्नों के सार भाग से आच्छन्न यह दिव्य परमोत्तम पलंग, जो सूक्ष्म वस्त्रों से सिली हुई है, शय्या के रूप में स्वीकार करो ॥८०॥ हे मुने ! इस भाँति दुर्गा जी की अर्चना करके उन्हें पुष्पाञ्जलि अर्पित करे । पश्चात् आठों नायिकाओं की यत्नपूर्वक अर्चना करे ॥८१॥ उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, अतिचण्डा, चामुण्डा, चण्डा और चण्डवती ये ही आठों नायिकायें हैं। अष्टदल वाले कमल में पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से पञ्चोपचार द्वारा इनकी और मध्य स्थित भैरवों की अर्चा सुसम्पन्न करे ॥८२-८३॥ सर्वप्रथम महाभैरव, संहारभैरव, असित (काले) अंग वाले भैरव, रुरुभैरव, कालभैरव, क्रोधभैरव, ताम्रचूड भैरव और चन्द्रचूडभैरव की अर्चना करने के उपरान्त उसी अष्टदल कमल के मध्यस्थल में नव शक्तियों की भी भक्तिपूर्वक पूजा करे ॥८४-८६॥ ब्रह्माणी, वैष्णवी, रौद्री, माहेश्वरी, नारसिंही, वाराही, इन्द्राणी, कार्तिकी और सर्वशक्तिस्वरूपा प्रधान सर्वमंगला इन नव शक्तियों की अर्चना करके कलश में देवों की पूजा करे ॥८७-८८॥ शंकर, कार्तिकेय, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण, देवी की चेटी (दासी) वटुक और चौंसठ योगिनियों की सविधान अर्चना करके यथाशक्ति बलिप्रदान करने के उपरान्त विद्वान् को उनकी स्तुति करनी चाहिये । ॥८९-९०॥ कवच को गले में बाँधकर भक्तिपूर्वक उसका पाठ करके परीहार करने के उपरान्त नमस्कार करे ॥९१॥

---

१ क. शक्तिकीं ।

बलिदानविधानं च श्रूयतां मुनिसत्तम। मायातिं महिषं छागं दद्यान्मेषादिकं शुभम्॥९२॥
सहस्रवर्षं सुप्रीता दुर्गा मायातिदानतः। महिषाच्छतवर्षं च दशवर्षं च च्छागलात्॥९३॥
वर्षं मेषेण कूष्माण्डैः पक्षिभिर्हरिणैस्तथा। दशवर्षं कृष्णसारैः सहस्राब्दं च गण्डकैः॥९४॥
कृत्रिमैः पिष्टनिर्माणैः षण्मासं पशुभिस्तथा। मासं [1]सुपक्वादिफलैरक्षतैरिति नारद॥९५॥
युवकं व्याधिहीनं च सशृङ्गं लक्षणान्वितम्। विशुद्धमविकाराङ्गं सुवर्णं पुष्टमेव च॥९६॥
शिशुना बलिना दातुर्हन्ति पुत्रं च चण्डिका। वृद्धेन वै गुरुजनं कृशेनापीष्टबान्धवान्॥९७॥
धनं चैवाधिकाङ्गेन हीनाङ्गेन प्रजास्तथा। कामिनीं शृङ्गभङ्गेन काणेन भ्रातरं तथा॥९८॥
घुटिकेन भवेन्मृत्युर्विघ्नं स्याच्चित्रमस्तकैः। हन्ति मित्रं ताम्रपृष्ठैर्भ्रष्टश्रीः पुच्छहीनतः॥९९॥
मायातीनां स्वरूपं च श्रूयतां मुनिसत्तम। वक्ष्याम्यथर्ववेदोक्तं फलहानिर्व्यतिक्रमे॥१००॥
पितृमातृविहीनं च युवकं व्याधिवर्जितम्। विवाहितं दीक्षितं च परदारविहीनकम्॥१०१॥
अजारजं विशुद्धं च सच्छूद्रपरिपोषितम्। तद्बन्धुभ्यो धनं दत्त्वा क्रीतं मूल्यातिरेकतः॥१०२॥
स्नापयित्वा च तं कर्ता पूजयेद्वस्त्रचन्दनैः। माल्यैर्धूपैश्च सिन्दूरैर्दधिगोरोचनादिभिः॥१०३॥
तं च वर्षं भ्रामयित्वा भृत्यद्वारेण यत्नतः। वर्षान्ते च समुत्सृज्य दुर्गायै तं निवेदयेत्॥१०४॥

सत्तम ! बलिदान का विधान मैं बता रहा हूँ, सुनो। मायाति (क्रीत मनुष्य), महिष (भैंसे), छाग (बकरे) और भेंड़ आदि की शुभ बलि उन्हें समर्पित करे। क्योंकि मायाति के दान से एक सहस्र वर्ष, महिष के दान से सौ वर्ष, बकरे के दान से दश वर्ष, भेंड़ से एक वर्ष और कूष्माण्ड, पक्षी, तथा हरिण से एक वर्ष, कृष्णसार (मृग) से दश वर्ष, गण्डक (गैंड़े) से सहस्रबर्ष, आटे के कृत्रिम पशु से छह मास, सुन्दर पके फल आदि से एक मास तक दुर्गा देवी अति प्रसन्न रहती हैं। हे नारद ! रोगरहित, युवा, शृंग सहित, लक्षणों से भूषित, विशुद्ध, निर्दोष अंगवाला, सुन्दर वर्ण वाला और हृष्ट-पुष्ट पशु बलिदान के लिए होना चाहिए ॥९२-९६॥ शिशु के बलिदान से चण्डिका यजमान के पुत्र का नाश करती है, उसी भाँति वृद्ध से गुरु जन का, दुर्बल से इष्टबन्धुवर्ग का, अधिक अंग वाले से धन का, हीनांग से प्रजा का, टूटी सींग वाले से स्त्री का और काने से भाई का नाश करती है ॥९७-९८॥ घुटिक (एड़ी के ऊपर की गाँठ) भंग रहने से यजमान की मृत्यु होती है, चित्रमस्तक से कार्य में बाधा, तांबे की भाँति पीठ वाले से मित्र का नाश और पुच्छहीन से श्री नष्ट होती है ॥९९॥ हे मुनिसत्तम ! अब अथर्ववेदोक्त मायाति का स्वरूप बता रहा हूँ, सुनो ! उसके व्यतिक्रम (उलटफेर) में फल की हानि होती है ॥१००॥ पिता-माता से रहित, नीरोग, विवाहित, दीक्षित, परस्त्रीरहित, जारज सन्तान नहीं, विशुद्ध तथा किसी सच्छूद्र द्वारा परिपालित युवक को, उसके बन्धु-वर्गों को धन देकर अत्यधिक मूल्य से क्रय करके ॥१०१-१०२॥ उसे नहलाकर कर्ता वस्त्र-चन्दन, माला-धूप, सिंदूर और दधि-गोरोचन आदि से उसकी पूजा करे और सेवकों के साथ वर्ष भर उसे भ्रमण कराने के उपरान्त वर्ष के अन्त में उसे देवी को बलि चढ़ादे

क.सुखाद्यादिफ०।

अष्टमीनवमीसंधौ दद्यान्मायातिमेव च। इत्येवं कथितं सर्वं बलिदानं प्रसङ्गतः ॥१०५॥
बलिं दत्त्वा च स्तुत्वा च धृत्वा च कवचं बुधः। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥१०६॥
इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० पूजाविधिबलिपशुलक्षणविशेषो
नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

श्रुतं सर्वं महाभाग सुधारसपरं वरम्। स्तोत्रं च कवचं पूजाफलं कालं वद प्रभो ॥१॥

नारायण उवाच

आर्द्रायां बोधयेद्देवीं मूलेनैव प्रवेशयेत्। उत्तरेणार्चयित्वा तां श्रवणायां विसर्जयेत् ॥२॥
आर्द्रायुक्तनवम्यां तु कृत्वा देव्याश्च [1]बोधनम्। पूजायाः शतवार्षिक्याः फलमाप्नोति मानवः ॥३॥
मूलायां तु प्रवेशे च नरमेधफलं लभेत्। उत्तरे पूजनं कृत्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥४॥
कृत्वा विसर्जनं देव्याः श्रवणायां च मानवः। लक्ष्मीं च पुत्रपौत्रांश्च लभते नात्र संशयः ॥५॥

॥१०३-१०४॥ अष्टमी-नवमी की सन्धि में मायाति का बलि प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार मैंने प्रसंगानुसार सभी बलिदान बता दिये ॥१०५॥ बलि प्रदान के अनन्तर देवी की स्तुति, कवचधारण, भूमि में दण्डवत् प्रणाम करके ब्राह्मण को दक्षिणा देनी चाहिए ॥१०६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण के संवादान्तर्गत दुर्गोपाख्यान में पूजा-विधि तथा बलिपशु का लक्षण विशेष कथन नामक चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६४॥

अध्याय ६५

ज्ञानकथन

नारद बोले—हे महाभाग! हे प्रभो! सुधारस से भी मधुर एवं श्रेष्ठ स्तोत्र, कवच आदि सभी कुछ सुन लिया, अब पूजा का फल और समय जानना चाहता हूँ ॥१॥

नारायण बोले—आर्द्रा नक्षत्र में देवी का जागरण, मूल में प्रवेश, उत्तरा में अर्चना और श्रवण नक्षत्र में विसर्जन करना चाहिए ॥२॥ आर्द्रा नक्षत्र युक्त नवमी तिथि में देवी का उद्बोधन करने से सौ वर्ष की पूजा का फल मनुष्य को प्राप्त होता है ॥३॥ मूल नक्षत्र में प्रवेश करने से नरमेध का फल प्राप्त होता है॥ ॥ श्रवण नक्षत्र में देवी का विसर्जन करने से मनुष्य को लक्ष्मी और पुत्र-पौत्र की प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं ॥५॥ उनकी

---

१ क. पूजनम्।

भुवः प्रदक्षिणापुण्यं पूजायां लभते नरः। नक्षत्रयोगाभावे तु पार्वत्याश्चैव नारद ॥६॥
नवम्यां बोधनं कृत्वा पक्षं संपूज्य मानवः। अश्वमेधफलावाप्त्यै दशम्यां च विसर्जयेत् ॥७॥
सप्तम्यां पूजनं कृत्वा बलिं दद्याद्विचक्षणः। अष्टम्यां पूजनं शस्तं बलिदानविवर्जितम् ॥८॥
अष्टम्यां बलिदानेन विपत्तिर्जायते नृणाम्। दद्याद्विचक्षणो भक्त्या नवम्यां विधिवदबलिम् ॥९॥
बलिदानेन विप्रेन्द्र दुर्गाप्रीतिर्भवेन्नृणाम्। हिंसाजन्यं न पापं च लभते यज्ञकर्मणि ॥१०॥
उत्सर्गकर्ता दाता च च्छेत्ता पोष्टा च रक्षकः। अग्रे पश्चान्निबद्धा च सप्तैतेऽवधकारिणः ॥११॥
यो यं हन्ति स तं हन्ति नेति वेदोक्तमेव च। कुर्वन्ति वैष्णवीं पूजां वैष्णवास्तेन हेतुना ॥१२॥
एवं संपूज्य सुरथः पूर्णं वर्षं च भक्तितः। कवचं च गले बध्वा तुष्टाव परमेश्वरीम् ॥१३॥
स्तोत्रेण परितुष्टा सा तस्य साक्षाद्बभूव ह। स ददर्श पुरो देवीं ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् ॥१४॥
तेजःस्वरूपां परमां सगुणां निर्गुणां वराम्। दृष्ट्वा तां कमनीयां च तेजोमण्डलमध्यतः ॥१५॥
स्वेच्छामयीं कृपारूपां भक्तानुग्रहकारिणीम्। पुनस्तुष्टाव राजेन्द्रो भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥१६॥
स्तवेन परितुष्टा सा सस्मिता स्नेहपूर्वकम्। उवाच सत्यं राजेन्द्रं कृपया जगदम्बिका ॥१७॥

पूजा में पृथ्वी की प्रदक्षिणा का पुण्य फल प्राप्त होता है। हे नारद! नक्षत्र-योग के अभाव में नवमी के दिन पार्वती का बोधन करके एक पक्ष पूजन करे और दशमी में विसर्जन करे तो अश्वमेध का फल प्राप्त होता है ॥६-७॥ बुद्धिमान् को चाहिए कि सप्तमी में पूजनोपरान्त बलि प्रदान करे, क्योंकि अष्टमी में केवल पूजन करना ही प्रशस्त बताया गया है बलिदान नहीं। अष्टमी में बलि प्रदान करने से मनुष्यों को विपत्ति प्राप्त होती है अतः विद्वान् को नवमी में भक्तिपूर्वक सविधि बलि प्रदान करना चाहिए ॥८-९॥ हे विप्रेन्द्र! बलि प्रदान करने से दुर्गा जी प्रसन्न होती हैं और यज्ञ-कर्म में बलि करने से हिंसाजनित पाप का भागी भी मनुष्य नहीं होता है ॥१०॥ (बलि प्रदान करने में) बलिपशु का उत्सर्ग (त्याग) करने वाला, उसका दाता, उसका वध करने वाला, उसका पालक, उसका रक्षक, आगे-पीछे से उसे बाँधने वाला, ये सातों वध के भागी नहीं होते हैं ॥११॥जो जिसका वध करता है, वह उसका वध करने वाला होता है, ऐसा वेद का कथन वहाँ लागू नहीं होता है। इसीलिए वैष्णव लोग वैष्णवी की पूजा करते हैं ॥१२॥ इस प्रकार राजा सुरथ ने पूरे वर्ष तक भक्तिपूर्वक देवी की अर्चना करके गले में कवच धारण किया और परमेश्वरी की स्तुति (आराधना) करना आरम्भ किया ॥१३॥ अनन्तर उस स्तोत्र से प्रसन्न होकर देवी ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया और उन्होंने अपने सामने स्थित देवी को ग्रीष्मकालीन सूर्य की भाँति प्रभापूर्ण देखा ॥१४॥ तेजोमण्डल के मध्य में तेजस्स्वरूप, परम सगुणरूप, निर्गुण, श्रेष्ठ, कमनीय, स्वेच्छामयी, कृपारूप और भक्तों पर अनुग्रह करने वाली देवी की राजेन्द्र ने भक्ति से कन्धे झुकाकर पुनः स्तुति की ॥१५-१६॥ उनकी स्तुति से अति प्रसन्न होकर मन्द मुसुकान करती हुई जगदम्बिका ने राजेन्द्र सुरथ से स्नेह और कृपापूर्वक सत्य वचन कहा ॥१७॥

प्रकृतिरुवाच

साक्षात्संप्राप्य मां राजन्वृणोषि विभवं वरम् । ददामि तुभ्यं विभवं सांप्रतं वाञ्छितं तव ॥१८॥
निर्जित्य सर्वाञ्छत्रूंश्च लब्ध्वा राज्यमकण्टकम् । भविष्यसि महाराज सावर्णिर्मनुरुष्टमः ॥१९॥
दास्यामि तुभ्यं ज्ञानं च परिणामे नराधिप । भक्तिं दास्यं च परमे श्रीकृष्णे परमात्मनि ॥२०॥
वृणोति विभवं यो हि साक्षान्मां प्राप्य मन्दधीः । मायया वञ्चितः सोऽपि विषमत्यमृतं त्यजन् ॥२१॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नश्वरमेव च । नित्यं सत्यं परं ब्रह्म कृष्णं निर्गुणमेव च ॥२२॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामहमाद्या परात्परा । सगुणा निर्गुणा चापि वरा स्वेच्छामयी सदा ॥२३॥
नित्यानित्या सर्वरूपा सर्वकारणकारणम् । बीजरूपा च सर्वेषां मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥२४॥
पुण्ये वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले । राधा प्राणाधिकाऽहं च कृष्णस्य परमात्मनः ॥२५॥
अहं दुर्गा विष्णुमाया बुद्ध्यधिष्ठातृदेवता । अहं लक्ष्मीश्च वैकुण्ठे स्वयं देवी सरस्वती ॥२६॥
सावित्री वेदमाताऽहं ब्रह्माणी ब्रह्मलोकतः । अहं गङ्गा च तुलसी सर्वाधारा वसुंधरा ॥२७॥
नानाविधाऽहं कलया मायया सर्वयोषितः । साऽहं कृष्णेन संसृष्टा नृप भ्रूभङ्गलीलया ॥२८॥
भ्रूभङ्गलीलया सृष्टो येन पुंसा महान्विराट् । लोम्नां कूपेषु विश्वानि यस्य सन्ति हि नित्यशः ॥२९॥

दुर्गा बोलीं—हे राजन् ! मेरा साक्षात् दर्शन प्राप्त कर यदि तुम ऐश्वर्य के अभिलाषी हो तो इसी समय मैं तुम्हें अभीष्ट ऐश्वर्य प्रदान करती हूँ ॥१८॥ हे महाराज ! समस्त शत्रुओं पर विजय और निष्कण्टक राज्य की प्राप्ति पूर्वक तुम अष्टम सावर्णि मनु भी होगे ॥१९॥ हे नराधिप ! मैं तुम्हें ज्ञान भी प्रदान कर रही हूँ, जिसके परिणामस्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण की दास्यभक्ति प्राप्त होगी ॥२०॥ क्योंकि जो मन्दबुद्धि प्राणी मेरा साक्षात् दर्शन प्राप्त कर ऐश्वर्य का अभिलाषी होता है, वह माया द्वारा वञ्चित होकर अमृत को छोड़कर विष भक्षण करता है ॥२१॥ ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त सभी वस्तु नश्वर है, भगवान् श्रीकृष्ण ही केवल नित्य सत्य, परब्रह्म और निर्गुण हैं ॥२२॥ इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवों की मैं आद्या, परात्परा, सगुणा, निर्गुणा, उत्तमा और सदा स्वेच्छामयी शक्ति हूँ ॥२३॥ ईश्वरी, मूलप्रकृति, नित्य-अनित्य, समस्त रूप, सम्पूर्ण कारणों का कारण और सभी लोगों का बीजरूप हूँ ॥२४॥ पवित्र वृन्दावन में, गोलोक में तथा रासमण्डल में परमात्मा श्रीकृष्ण की प्राणों से अधिक प्रिया राधिका हूँ ॥२५॥ मैं ही दुर्गा, विष्णुमाया, बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी, वैकुण्ठ की लक्ष्मी, साक्षात् देवी, सरस्वती वेदमाता सावित्री, ब्रह्मलोक की ब्रह्माणी, गंगा, तुलसी और सबका आधार वसुन्धरा (पृथिवी) हूँ ॥२६-२७॥ मैं ही अनेक भाँति की कला और माया द्वारा समस्त स्त्रियों का स्वरूप हूँ । हे नृप ! कृष्ण ने अपनी भ्रूभंगलीला मात्र से ही मेरी रचना की है । क्योंकि जिस पुरुष ने भ्रूभंगलीला मात्र से महाविराट् को उत्पन्न किया, जिसके लोमकूपों में नित्य समस्त विश्व स्थित रहते हैं, वे ही

असंख्यानि च तान्येव कृत्रिमाणि च मायया । अनित्ये नित्यबुद्धिं च सर्वे कुर्वन्ति संततम् ॥३०॥
सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपा वसुंधरा । तदधः सप्त पातालाः स्वर्लोकाश्चैव सप्त च ॥३१॥
एवं विश्वं बहुविधं ब्रह्माण्डं ब्रह्मणा कृतम् । प्रत्येकं सर्वविध्यण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥३२॥
सर्वेषामीश्वरः कृष्ण इति ज्ञानं परात्परम् । वेदानां च व्रतानां च तीर्थानां तपसां तथा ॥३३॥
देवानां चैव पुण्यानां सारः कृष्ण इति स्मृतः । तद्भक्तिहीनो यो मूढः स च जीवन्मृतो ध्रुवम् ॥३४॥
पवित्राणि च तीर्थानि तद्भक्तस्पर्शवायुना । तन्मन्त्रोपासकश्चैव जीवन्मुक्त इति स्मृतः ॥३५॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् । विना जपेन तपसा विना तीर्थेन पूजया ॥३६॥
मातामहानां शतकं पितॄणां च सहस्रकम् । पुंसामेवं समुद्धृत्य गोलोकं च स गच्छति ॥३७॥
इदं ज्ञानं सारभूतं कथितं ते नराधिप । मन्वन्तरान्ते भोगान्ते भक्तिं दास्यामि ते हरौ ॥३८॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥३९॥
अहं यमनुगृह्णामि तस्मै दास्यामि निर्मलाम् । निश्चलां सुदृढां भक्तिं श्रीकृष्णे परमात्मनि ॥४०॥
करोमि वञ्चनां यं यं तेभ्यो दास्यामि संपदम् । प्रातः स्वप्नस्वरूपां च मिथ्येति भ्रमरूपिणीम् ॥४१॥
इति ते कथितं ज्ञानं गच्छ वत्स यथासुखम् । इत्युक्त्वा च महादेवी तत्रैवान्तरधीयत ॥४२॥

कृत्रिम और असंख्य हैं और उसी अनित्य को सब लोग निरन्तर नित्य मानते हैं ॥२८-३०॥ सातों सागरों और सातों द्वीपों समेत यह पृथिवी, उसके नीचे के पाताल आदि सात लोक और ऊपर वाले स्वर्ग आदि सात लोक, इस भाँति अनेक प्रकार के विश्व (ब्रह्माण्ड) का निर्माण ब्रह्मा ने किया है। और प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देव रहते हैं ॥३१-३२॥ किन्तु सभी के ईश्वर भगवान् श्री कृष्ण हैं, यह परात्पर (अत्यन्त श्रेष्ठ) ज्ञान है। सभी वेद, व्रत, तीर्थ, तप, देव और पुण्य का सारभाग श्री कृष्ण माने गये हैं। इसीलिए जो उनकी भक्ति से विहीन है, वह मूढ़ निश्चित जीवन्मृत है ॥३३-३४॥ उनके भक्त के स्पर्श-वायु द्वारा तीर्थ पवित्र होते हैं और उनके मंत्र की उपासना करने वाला जीवन्मुक्त होता है ॥३५॥ क्योंकि उनके मंत्रग्रहण मात्र से मनुष्य जप, तप, तीर्थ और पूजा के बिना ही नारायण हो जाता है ॥३६॥ वह मातामह (नाना) की सौ पीढ़ियों और पिता की सहस्र पीढ़ियों का उद्धार कर स्वयं गोलोक चला जाता है ॥३७॥ हे नराधिप! समस्त का सारभूत यह ज्ञान मैंने तुम्हें बता दिया और एक मन्वन्तर तक भोग कर चुकने के अन्त में तुम्हें भगवान् की भक्ति प्रदान करूँगी। क्योंकि करोड़ों कल्प के बीत जाने पर भी कर्म बिना उपभोग किये नष्ट नहीं होता है, इसलिए शुभ-अशुभ कर्म का उपभोग अवश्य करना पड़ता है ॥३८-३९॥ मैं जिस पर अनुग्रह करती हूँ, उसे परमात्मा श्रीकृष्ण की निर्मल, निश्चल और अतिदृढ़ भक्ति प्रदान करती हूँ। और जिसकी वञ्चना करती हूँ, उसे सम्पत्ति प्रदान करती हूँ, जो प्रातःकालीन स्वप्न की भाँति मिथ्या और भयावह होती है ॥४०-४१॥ हे वत्स! इस प्रकार तुम्हें ज्ञान बता दिया, अब यथासुख चले जाओ। इतना कहकर महादेवी उसी स्थान पर

राजा संप्राप्य राज्यं च नत्वा तां प्रययौ गृहम् । इति ते कथितं वत्स दुर्गोपाख्यानमुत्तमम् ॥४३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० दुर्गासुरथसं० ज्ञानकथनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

श्रुतं सर्वं नावशिष्टं किंचिदेव हि निश्चितम् । प्रकृतेः कवचं स्तोत्रं ब्रूहि मे मुनिसत्तम ॥१॥

नारायण उवाच

पुरा स्तुता सा गोलोके कृष्णेन परमात्मना । संपूज्य मधुमासे च संप्रीते रासमण्डले ॥२॥
मधुकैटभयोर्युद्धे द्वितीये विष्णुना पुरा । तत्रैव काले सा दुर्गा ब्रह्मणा प्राणसंकटे ॥३॥
चतुर्थे संस्तुता देवी भक्त्या च त्रिपुरारिणा । पुरा त्रिपुरयुद्धे च महाघोरतरे मुने ॥४॥
पञ्चमे संस्तुता देवी वृत्रासुरवधे तथा । शक्रेण सर्वदेवैश्च घोरे च प्राणसंकटे ॥५॥
तदा मुनीन्द्रैर्मनुभिर्मानवैः सुरथादिभिः । संस्तुता पूजिता सा च कल्पे कल्पे परात्परा ॥६॥

अन्तर्हित हो गयी ॥४२॥ राजा भी राज्य प्राप्त कर देवी को नमस्कार करके अपने घर चला गया। हे वत्स! इस प्रकार मैंने दुर्गा जी का परमोत्तम उपाख्यान तुम्हें सुना दिया ॥४३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में प्रकृति-सुरथ-संवाद में ज्ञानकथन नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६५॥

अध्याय ६६

दुर्गा का स्तोत्र

नारद बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने सब सुन लिया, कुछ भी शेष नहीं है। अब प्रकृति का कवच और स्तोत्र मुझे बताने की कृपा कीजिये ॥१॥

नारायण बोले—पूर्वकाल में गोलोक में परमात्मा श्रीकृष्ण ने प्रकृति की स्तुति की और पुनः चैत्रमास में रासमण्डल में अतिप्रेम से देवी की पूजा की। मधुकैटभ के युद्ध में विष्णु ने और उसी समय ब्रह्मा ने प्राणसंकट उपस्थित होने पर दुर्गा की आराधना की। चौथे समय हे मुने! पूर्वकालीन त्रिपुरासुर के महाघोर युद्ध में त्रिपुरारि (शिव) ने भक्तिपूर्वक दुर्गा देवी की अर्चना की। पांचवीं बार वृत्रासुर के वध में इन्द्र ने घोर प्राणसंकट उपस्थित होने पर देवों समेत देवी की अर्चना की। तब मुनिवृन्द, मनुवृन्द और राजा सुरथ आदि मनुष्यों ने देवी की स्तुति-पूजा की। इस प्रकार प्रत्येक कल्प में वह परात्परा देवी स्तुत और पूजित हुई हैं ॥२-६॥

स्तोत्रं च श्रूयतां ब्रह्मन्सर्वविघ्नविनाशकम् । सुखदं मोक्षदं सारं भवसंतारकारणम् ॥७॥

श्रीकृष्ण उवाच

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी । त्वमेवाऽऽद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका ॥८॥
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम् । परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या[1] सनातनी ॥९॥
तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा । सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा ॥१०॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया । सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला ॥११॥
सर्वबुद्धिस्वरूपा च सर्वशक्तिस्वरूपिणी । सर्वज्ञानप्रदा देवी सर्वज्ञा सर्वभाविनी ॥१२॥
त्वं स्वाहा देवदाने च पितृदाने स्वधा स्वयम् । दक्षिणा सर्वदाने च सर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥१३॥
निद्रा त्वं च दया त्वं च तृष्णा त्वं चाऽऽत्मनः प्रिया । क्षुत्क्षान्तिः शान्तिरीशा च कान्तिस्तुष्टिश्च शाश्वती ॥१४॥
श्रद्धा पुष्टिश्च तन्द्रा च लज्जा शोभा प्रभा तथा । सतां संपत्स्वरूपा श्रीर्विपत्तिरसतामिह ॥१५॥
प्रीतिरूपा पुण्यवतां पापिनां कलहाङ्कुरा । शश्वत्कर्ममयी शक्तिः सर्वदा सर्वजीविनाम् ॥१६॥
देवेभ्यः स्वपदं दात्री धातुर्धात्री कृपामयी । हिताय सर्वदेवानां सर्वासुरविनाशिनी ॥१७॥
योगनिद्रा योगरूपा योगदात्री च योगिनाम् । सिद्धिस्वरूपा सिद्धानां सिद्धिदा सिद्धयोगिनी ॥१८॥

हे ब्रह्मन् ! अब मैं तुम्हें समस्त विघ्नों का नाशक स्तोत्र बता रहा हूँ, जो सुख और मोक्ष देने वाला, तत्त्वरूप और संसार से पार करने का कारण है, सुनो ॥-७॥

श्रीकृष्ण बोले—तुम्हीं सबकी जननी, मूलप्रकृति एवं ईश्वरी हो। सृष्टि-विधान में तुम्ही आद्या शक्ति तथा स्वेच्छया त्रिगुण स्वरूप वाली हो ॥८॥ कार्य के लिए तुम सगुण हो और वस्तुतः स्वयं निर्गुण हो। तुम परब्रह्म-स्वरूप, सत्य, अनित्य एवं सनातनी हो ॥९॥ तेजःस्वरूप, परमोत्तम, भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाली, सबका स्वरूप, सब की अधीश्वरी, सब का आधार, परात्परा, सब का बीज रूप, सब की पूज्या, निराश्रया, सर्वज्ञान-वाली, सर्वतोभद्ररूप और समस्त मंगलों का मंगल हो ॥१०-११॥ समस्त बुद्धि स्वरूप, समस्त शक्ति स्वरूप, समस्त ज्ञान की प्रदायिनी, देवी, सर्वज्ञा और सर्वभाविनी हो ॥१२॥ तुम ही देवों के दान में स्वाहा, पितरों के दान में स्वधा, समस्त दान में दक्षिणा और सबकी शक्ति स्वरूप हो ॥१३॥ निद्रा, दया, तृष्णा, आत्मप्रिया, क्षुधा की शान्ति, शान्ति, ईशा, कान्ति तथा शाश्वत शान्ति हो। श्रद्धा, पुष्टि, तन्द्रा, लज्जा, शोभा, प्रभा और सज्जनों की सम्पत्ति एवं असज्जनों की विपत्ति रूपा हो ॥१४-१५॥ पुण्यवानों की प्रीति, पापियों का कलहबीज तथा समस्त जीवों की निरन्तर कर्ममयी शक्ति हो। देवों को उनके पद देने वाली, ब्रह्मा की कृपामयी धात्री तथा समस्त देवों के हितार्थ समस्त दैत्यों की विनाशिनी हो ॥१६-१७॥ योगियों की योगनिद्रा, योगरूप, योगियों को योग देने वाली, सिद्धिस्वरूप, सिद्धों को सिद्धि देने वाली तथा सिद्धयोगिनी हो ॥१८॥ तुम ब्रह्माणी, माहेश्वरी, विष्णु की

---

१ क. ०त्याऽऽनन्दस्वरूपिणी ।

माहेश्वरी च ब्रह्माणी विष्णुमाया च वैष्णवी। भद्रदा भद्रकाली च सर्वलोकभयंकरी ॥१९॥
ग्रामे ग्रामे ग्रामदेवी गृहदेवी गृहे गृहे। सतां कीर्तिः प्रतिष्ठा च निन्दा त्वमसतां सदा ॥२०॥
महायुद्धे महामारी दुष्टसंहाररूपिणी। रक्षास्वरूपा शिष्टानां[1] मातेव हितकारिणी ॥२१॥
वन्द्या पूज्या स्तुता त्वं च ब्रह्मादीनां च सर्वदा। ब्रह्मण्यरूपा विप्राणां तपस्या च तपस्विनाम् ॥२२॥
विद्या विद्यावतां त्वं च बुद्धिर्बुद्धिमतां सताम्। मेधा स्मृतिस्वरूपा च प्रतिभा प्रतिभावताम् ॥२३॥
राज्ञां प्रतापरूपा च विशां वाणिज्यरूपिणी। सृष्टौ सृष्टिस्वरूपा त्वं रक्षारूपा च पालने ॥२४॥
तथाऽन्ते त्वं महामारी विश्वे विश्वेश्च पूजिते। कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च मोहिनी ॥२५॥
दुरत्यया मे माया त्वं यया संमोहितं जगत्। यया मुग्धो हि विद्वांश्च मोक्षमार्गं न पश्यति ॥२६॥
इत्यात्मना कृतं स्तोत्रं दुर्गाया[2] दुर्गनाशनम्। पूजाकाले पठेद्यो हि सिद्धिर्भवति वाञ्छिता ॥२७॥
वन्ध्या च काकवन्ध्या च मृतवत्सा च दुर्भगा। श्रुत्वा स्तोत्रं वर्षमेकं सुपुत्रं लभते ध्रुवम् ॥२८॥
कारागारे महाघोरे यो बद्धो दृढबन्धने। श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम् ॥२९॥
यक्ष्मग्रस्तो गलत्कुष्ठी महाशूली महाज्वरी। श्रुत्वा स्तोत्रं वर्षमेकं सद्यो रोगात्प्रमुच्यते ॥३०॥
पुत्रभेदे प्रजाभेदे पत्नीभेदे च दुर्गतः। श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं लभते नात्र संशयः ॥३१॥

माया, वैष्णवी, भद्र (कल्याण) प्रदा, भद्रकाली तथा समस्त लोकों के लिए भयंकरी हो ॥१९॥ गाँवों की ग्रामदेवी, घरों की गृहदेवी, सज्जनों की कीर्ति, प्रतिष्ठा और असज्जनों की निन्दा रूप हो ॥२०॥ महायुद्ध में महामारी रूप, दुष्टों का संहार करने वाली, शिष्टों (सज्जनों) की रक्षा रूप और माता की भाँति हितैषिणी हो ॥२१॥ और सदा ब्रह्मा आदि देवों की वन्द्या, पूज्या एवं स्तुत्य हो, ब्राह्मणों का ब्राह्मण्यरूप और तपस्वियों की तपस्या हो। विद्यावानों की विद्या, बद्धिमानों की बुद्धि, सज्जनों की मेधा और प्रतिभाशालियों की स्मृति तथा प्रतिभा हो ॥२२-२३॥ राजाओं का प्रताप, व्यापारियों का व्यापार, सृष्टि में सृष्टिरूप, पालन में रक्षा रूप तथा अन्त में महामारी हो। विश्व में समस्त लोगों से पूजित हो। कालरात्रि, महारात्रि, मोहरात्रि और मोहिनी हो ॥२४-२५॥ तुम हमारी दुस्तर माया हो, जिससे सारा जगत् मोहित है और जिससे मुग्ध होकर विद्वान् लोग भी मोक्ष नहीं देखते हैं ॥२६॥ यह अपना बनाया हुआ दुर्गा जी का दुर्गनाशक स्तोत्र पूजा के समय जो पढ़ेगा, उसे अभिलषित सिद्धि मिलेगी ॥२७॥ वन्ध्या, काकवन्ध्या, मृतवत्सा एवं दुर्भगा स्त्री एक वर्ष तक इसके सुनने से उत्तम पुत्र को निश्चित प्राप्त करती है ॥२८॥ महाघोर कारागृह (जेल) में जो दृढ़ बन्धनों (हथकड़ी-बेड़ी) से जकड़ा हुआ पड़ा हो, वह एक मास तक इस स्तोत्र के सुनने से निश्चित बन्धन-मुक्त हो जाता है ॥२९॥ यक्ष्मा का रोगी, गलत्कुष्ठ का रोगी, महाशूली तथा महाज्वरग्रस्त व्यक्ति एक वर्ष तक इसे सुनने से तुरन्त रोगमुक्त हो जाता है ॥३०॥ पुत्र, प्रजा और पत्नी से भेद (द्वेष) होने पर एक मास तक इस स्तोत्र के सुनने से वह द्वेष निश्चित नष्ट हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥३१॥

क. शिष्या। २ क. स्वर्गकारणम्।

राजद्वारे श्मशाने च महारण्ये रणस्थले। हिंस्रजन्तुसमीपे च श्रुत्वा स्तोत्रं प्रमुच्यते॥३२॥
गृहदाहे च दावाग्नौ दस्युसैन्यसमन्विते। स्तोत्रश्रवणमात्रेण लभते नात्र संशयः॥३३॥
महादरिद्रो मूर्खश्च वर्षं स्तोत्रं पठेत्तु यः। विद्यावान्धनवांश्चैव स भवेन्नात्र संशयः॥३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० दुर्गास्तोत्रं नाम
षट्षष्टितमोऽध्यायः॥६६॥

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

नारद उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वज्ञानविशारद। ब्रह्माण्डमोहनं नाम प्रकृतेः कवचं वद॥१॥

नारायण उवाच

शृणु वक्ष्यामि हे वत्स कवचं च सुदुर्लभम्। श्रीकृष्णेनैव कथितं कृपया ब्रह्मणे पुरा॥२॥
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं धर्माय जाह्नवीतटे। धर्मेण दत्तं मह्यं च कृपया पुष्करे पुरा॥३॥
त्रिपुरारिश्च यद्धृत्वा जघान त्रिपुरं पुरा। मुमोच धाता यद्धृत्वा मधुकैटभयोर्भयम्॥४॥
जघान रक्तबीजं तं यद्धृत्वा भद्रकालिका। यद्धृत्वा तु महेन्द्रश्च संप्राप कमलालयाम्॥५॥

राजदरबार, श्मशान, घोर वन, युद्धस्थल और हिंसक जन्तुओं के समीप इसे सुनने से मनुष्य भयमक्त हो जाता है॥३२॥ गृह के जलते समय, दावाग्नि में और चोरों-डाकुओं की सेनाओं से घिर जाने पर इस स्तोत्र के सुनने मात्र से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं॥३३॥ महादरिद्र एवं महामूर्ख एक वर्ष तक पाठ करने पर विद्या और धन से सुसम्पन्न हो जाता है, इसमें संशय नहीं॥३४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में
दुर्गास्तोत्रकथन नामक छाछठवाँ अध्याय समाप्त॥६६॥

अध्याय ६७

ब्रह्माण्डमोहनकवच

नारद बोले—हे भगवन्! समस्त धर्मों के ज्ञाता! और समस्त ज्ञान में निपुण! प्रकृति का ब्रह्माण्डमोहन नामक कवच बतायें॥१॥

नारायण बोले—हे वत्स! सुनो, अति दुर्लभ कवच मैं कह रहा हूँ, जिसे पूर्वकाल में भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा को कृपया बताया था॥२॥ पूर्वकाल में ब्रह्मा ने गंगा-तट पर धर्म से कहा और धर्म ने कृपापूर्वक पुष्कर में मुझसे कहा॥३॥ जिसे पूर्व समय त्रिपुरारि (शिव) ने धारण कर त्रिपुरासुर का वध किया, जिसे धारण कर ब्रह्मा मधुकैटभ-जनित भय से मुक्त हुए, जिसे धारण कर भद्रकाली ने रक्तबीज का हनन किया॥४॥ जिसे धारण कर महेन्द्र ने कमला (लक्ष्मी) की प्राप्ति की। जिसे धारण कर महाकाल धार्मिक एवं चिरजीवी

यद्धृत्वा च महाकालश्चिरजीवी च धार्मिकः। यद्धृत्वा च महाज्ञानी नन्दी सानन्दपूर्वकम् ॥६॥
यद्धृत्वा च महायोद्धा रामः[1] शत्रुभयंकरः। यद्धृत्वा शिवतुल्यश्च दुर्वासा ज्ञानिनां वरः ॥७॥
ॐ दुर्गेति चतुर्थ्यन्तः स्वाहान्तो मे शिरोऽवतु। मन्त्रः षडक्षरोऽयं च भक्तानां कल्पपादपः ॥८॥
विचारो नास्ति वेदेषु ग्रहणेऽस्य मनोर्मुने। मन्त्रग्रहणमात्रेण विष्णुतुल्यो भवेन्नरः ॥९॥
मम वक्त्रं सदा पातु चों दुर्गायै नमोन्ततः। ॐदुर्गे रक्षयति च कण्ठं पातु सदा मम ॥१०॥
ॐ ह्रीं श्रीमिति मन्त्रोऽयं स्कन्धं पातु निरन्तरम्। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीमिति पृष्ठं पातु मे सर्वतः सदा ॥११॥
ह्रीं मे वक्षःस्थलं पातु हस्तं श्रीमिति संततम्। [2]ॐश्रीं ह्रीं क्लीं पातु सर्वाङ्गं स्वप्ने जागरणे तथा ॥१२॥
प्राच्यां मां प्रकृतिः पातुः पातु वह्नौ च चण्डिका। दक्षिणे भद्रकाली च नैर्ऋत्यां च महेश्वरी ॥१३॥
वारुण्यां पातु वाराही वायव्यां सर्वमङ्गला। उत्तरे वैष्णवी पातु तथैशान्यां शिवप्रिया ॥१४॥
जले स्थले चान्तरिक्षे पातु मां जगदम्बिका। इति ते कथितं वत्स कवचं च सुदुर्लभम् ॥१५॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्। गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः ॥१६॥
कवचं धारयेद्यस्तु सोऽपि विष्णुर्न संशयः। स्नाने च सर्वतीर्थानां पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे ॥१७॥

हुए। जिसे धारण कर नन्दी आनन्दपूर्वक महाज्ञानी हो गया ॥५-६॥ जिसे धारण कर राम (परशुराम) शत्रु के लिए भयंकर महायोद्धा हुए और जिसे धारण कर दुर्वासा ज्ञानियों में श्रेष्ठ एवं शिव के तुल्य हुए ॥७॥ 'ओं दुर्गायै स्वाहा' भक्तों के लिए कल्पवृक्ष रूप यह षडक्षर मंत्र मेरे शिर की रक्षा करे। हे मुने! इस मन्त्र ग्रहण के विषय में वेदों में कोई विचार नहीं किया गया है। मन्त्र ग्रहण-मात्र से ही मनुष्य विष्णु के तुल्य हो जाता है ॥८-९॥ 'ओं दुर्गायै नमः' यह मंत्र मेरे मुख की सदा रक्षा करे। ओं दुर्गे मेरे कण्ठ की सदा रक्षा करे ॥१०॥ 'ओं ह्रीं श्रीं' यह मंत्र मेरे कन्धे की निरन्तर रक्षा करे। 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं' यह मंत्र मेरे पृष्ठ भाग की सदा रक्षा करे ॥११॥ ह्रीं मेरे वक्षःस्थल की रक्षा करे, 'श्रीं' निरन्तर हाथ की रक्षा करे। 'ओं श्रीं ह्रीं क्लीं' यह मंत्र स्वप्न और जागरण अवस्था में सर्वांग की रक्षा करे ॥१२॥ पूर्व की ओर मुझे प्रकृति रक्षित रखे, अग्निकोण की ओर चण्डिका रक्षा करे। दक्षिण की ओर भद्रकाली, नैर्ऋत्य में महेश्वरी, पश्चिम की ओर वाराही रक्षा करे, वायव्य की ओर सर्वमंगला, उत्तर की ओर वैष्णवी रक्षा करे, ईशान की ओर शिवप्रिया रक्षा करे ॥१३-१४॥ तथा जल, स्थल और अन्तरिक्ष (आकाश) में जगदम्बिका मेरी रक्षा करे। हे वत्स! इस प्रकार मैंने अति दुर्लभ कवच तुम्हें बता दिया, इसे जिस किसी को नहीं देना चाहिए और न किसी से कहना ही चाहिए। वस्त्र-अलंकार द्वारा गुरु की सविधान अर्चना करके जो इस कवच को धारण करता है, वह भी विष्णु हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥१५-१६½॥ हे मुने! समस्त तीर्थों की यात्रा और पृथिवी की प्रदक्षिणा करने से जिस फल की प्राप्ति

---

१ क. बाणः। २ क. ऐं।

यत्फलं लभते लोकस्तदेतद्धारणान्मुने। पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धमेतद्धुवेद्ध्रुवम् ॥१८॥
लोके च सिद्धकवचं नास्त्रं विध्यति संकटे। न तस्य मृत्युर्भवति जले वह्नौ विषे ज्वरे ॥१९॥
जीवन्मुक्तो भवेत्सोऽपि सर्वसिद्धेश्वरेश्वरः। यदि स्यात्सिद्धकवचो विष्णुतुल्यो भवेद्ध्रुवम् ॥२०॥
कथितं प्रकृतेः खण्डं सुधाखण्डात्परं मुने। या चैव मूलप्रकृतिर्यस्याः पुत्रो गणेश्वरः ॥२१॥
कृत्वा कृष्णव्रतं सा च लेभे गणपतिं सुतम्। स्वांशेन कृष्णो भगवान्बभूव च गणेश्वरः ॥२२॥
श्रुत्वा च प्रकृतेः खण्डं सुश्राव्यं च सुधोपमम्। भोजयित्वा च दध्यन्नं तस्मै दद्याच्च काञ्चनम् ॥२३॥
सवत्सां सुरभिं रम्यां दद्याद्वै भक्तिपूर्वकम्। वासोऽलंकाररत्नैश्च तोषयेद्वाचकं मुने ॥२४॥
पुष्पालंकारवसनैरुपहारगणैस्तथा। पुस्तकं पूजयेदेवं भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥२५॥
एवं कृत्वा यः शृणोति तस्य विष्णुः प्रसीदति। वर्धते पुत्रपौत्रादिर्यशस्वी तत्प्रसादतः ॥२६॥
लक्ष्मीर्वसति तद्गेहे ह्यन्ते गोलोकमाप्नुयात्। लभेत्कृष्णस्य दास्यं स भक्तिं कृष्णे सुनिश्चलाम् ॥२७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्गोपा० ब्रह्माण्डमोहनकवचं
नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

समाप्तमिदं श्रीमद्ब्रह्मवैवर्तपुराणस्य द्वितीयं प्रकृतिखण्डम् ॥

●

होती है, वह इसके धारण मात्र से प्राप्त होता है ॥१७½॥ पाँच लाख जप करने से यह निश्चित सिद्ध हो जाता है। लोक में कवच सिद्ध हो जाने पर संकट के समय अस्त्र वेध नहीं करता है। जल में अग्नि में, विष से या ज्वर से उसकी मृत्यु नहीं होती है ॥१८-१९॥ वह सर्वसिद्धेश्वर होकर जीवन्मुक्त हो जाता है मनुष्य यदि सिद्धकवच हो जाता है, तो वह निश्चित भगवान् विष्णु के तुल्य होता है ॥२०॥ हे मुने! इस प्रकार मैंने सुधाखण्ड से भी उत्तम यह प्रकृतिखण्ड कह कर तुम्हें सुना दिया। जो मूल प्रकृति है एवं जिसके पुत्र गणेश्वर हुए हैं, उसी प्रकृति ने भगवान् श्रीकृष्ण का व्रत सुसम्पन्न कर गणपति को पुत्र रूप में प्राप्त किया है और भगवान् श्रीकृष्ण ही अपने अंश द्वारा गणेश्वर हुए हैं ॥२१-२२॥ इस प्रकार अच्छी तरह सुनाने योग्य और अमृत के समान मधुर प्रकृतिखण्ड का श्रवण कर, ब्राह्मण को दही अन्न भोजन कराये और सुवर्ण की दक्षिणा प्रदान करे ॥२३॥ तथा भक्तिपूर्वक सवत्सा गौ भी प्रदान करे। हे मुने! वस्त्र, अलंकार और रत्नों आदि से वाचक को प्रसन्न करे, पुष्प, अलंकार, वस्त्र रूप उपहार भी समर्पित करे। इसी भाँति भक्ति-श्रद्धा समेत पुस्तक की भी पूजा करे ॥२४-२५॥ इस प्रकार जो इसका श्रवण करता है, उस पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। उनके प्रसाद से पुत्र-पौत्र समेत उस यशस्वी की वृद्धि होती है, उसके घर लक्ष्मी निवास करती है और और अन्त में वह गोलोक जाकर भगवान् श्रीकृष्ण की अति निश्चल दास्य भक्ति प्राप्त करता है ॥२६-२७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत दुर्गोपाख्यान में ब्रह्माण्डमोहनकवचवर्णननामक सरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६७॥

●

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतं

ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

तत्र तृतीयं गणपतिखण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

पार्वती की उत्पत्ति और उनसे कार्तिकेय का जन्म

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥१॥

नारद उवाच

श्रुतं प्रकृतिखण्डं तदमृतार्णवमुत्तमम्। सर्वोत्कृष्टमभीष्टं च मूढानां ज्ञानवर्धनम्॥२॥
अधुना[1] श्रीगणेशस्य खण्डं श्रोतुमिहाऽऽगतः। तज्जन्मचरितं नृणां सर्वमङ्गलमङ्गलम्॥३॥
कथं जज्ञे सुरश्रेष्ठः पार्वत्या उदरे शुभे। देवी केन प्रकारेण चालभत्तादृशं सुतम्॥४॥
स चांशः कस्य देवस्य कथं जन्म ललाभ सः। अयोनिसंभवः किंवा किंवाऽसौ योनिसंभवः॥५॥

गणपतिखण्ड आरम्भ

अध्याय १

नृ-श्रेष्ठ नारायण, वाग्देवी सरस्वती एवं व्यास जी को नमस्कार कर के जय शब्दोच्चारण पूर्वक पुराणादि का कथन (कथन-श्रवण) करना चाहिए॥१॥

नारद बोले—अमृत-सागर के समान उत्तम प्रकृतिखण्ड मैंने सुन लिया, जो सबसे उत्कृष्ट, अभीष्ट और मूढ़ों का ज्ञानवर्द्धक है। इस समय मैं श्री गणेशखण्ड सुनना चाहता हूँ, क्योंकि उनका जन्म मनुष्यों के समस्त मंगलों का मंगल रूप है। वह सुरश्रेष्ठ पार्वती जी के शुभ उदर से कैसे उत्पन्न हुए ? देवी ने किस उपाय से उस प्रकार का पुत्र प्राप्त किया ? वह किस देव का अंश है, कैसे उन्होंने जन्म ग्रहण किया। वे अयोनिज (योनि से न उत्पन्न

---

१ क. ०ना श्रोतुमिच्छामि गाणेशं खण्डमीश्वर। त०।

किंवा तद्ब्रह्मतेजो वा किं तस्य च पराक्रमः । का तपस्या च किं ज्ञानं किं वा तन्निर्मलं यशः ॥६॥
कथं तस्य पुरः पूजा विश्वेषु निखिलेषु च । स्थिते नारायणे शंभौ जगदीशे च धातरि ॥७॥
पुराणेषु निगूढं च तज्जन्म परिकीर्तितम् । कथं वा गजवक्त्रोऽयमेकदन्तो महोदरः ॥८॥
एतत्सर्वं समाचक्ष्व श्रोतुं कौतूहलं मम । सुविस्तीर्णं महाभाग तदतीव मनोहरम् ॥९॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । पापसंतापहरणं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥१०॥
सर्वमङ्गलदं सारं सर्वश्रुतिमनोहरम् । सुखदं मोक्षबीजं च [1]पापमूलनिकृन्तनम् ॥११॥
दैत्यार्दितानां देवानां तेजोराशिसमुद्भवा । देवी संहृत्य दैत्यौघान्दक्षकन्या बभूव ह ॥१२॥
सा च नाम्ना सती देवी स्वामिनो निन्दया पुरा । देहं संत्यज्य योगेन जाता शैलप्रियोदरे ॥१३॥
शंकराय ददौ तां च पार्वतीं पर्वतो मुदा । तां गृहीत्वा महादेवो जगाम विजनं वनम् ॥१४॥
शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम् । स रेमे नर्मदातीरे पुष्पोद्याने तया सह ॥१५॥
सहस्रवर्षपर्यन्तं दैवमानेन नारद । तयोर्बभूव शृङ्गारो विपरीतादिको महान् ॥१६॥

होने वाले) हैं या योनि से उत्पन्न हुए हैं ॥२-५॥ उनका ब्रह्मतेज, उनका पराक्रम, तपस्या, ज्ञान और निर्मल यश कैसा है? समस्त विश्व में जगदीश नारायण, शम्भु और ब्रह्मा के रहते सब से पहले उन्हीं की पूजा क्यों होती है? पुराणों में उनका जन्म अति निगूढ़ बताया गया है। उनके, हाथी का मुख, एक दाँत और महान् उदर कैसे हुए? हे महाभाग! यह अतिविस्तार से बताने की कृपा कीजिये, क्योंकि यह अत्यन्त मनोहर है और इसे सुनने के लिए मुझे महान् कौतूहल हो रहा है ॥६-९॥

नारायण बोले—हे नारद! सुनो, इस परम अद्भुत रहस्य को मैं बता रहा हूँ, जो पापरूपी सन्ताप का अपहरण करने वाला, समस्त विघ्नों का नाशक, समस्तमंगलप्रद, सबका सारभाग, सबको सुनने में मनोहर, सुखदायक, मोक्ष का कारण तथा पापमूल का नाशक है ॥१०-११॥ दैत्यों द्वारा संतप्त देवों की तेजोराशि से प्रकट होकर देवी ने दैत्यों का संहार करने के उपरान्त दक्ष के यहाँ कन्या होकर जन्म ग्रहण किया ॥१२॥ वहाँ उनका नाम सती हुआ। फिर पूर्वकाल में स्वामी (शिव) की निन्दा के कारण उन्होंने योगद्वारा शरीर त्याग कर हिमालय की पत्नी मेना के उदर से जन्म ग्रहण किया ॥१३॥ पर्वतराज हिमवान् ने प्रसन्नतापूर्वक पार्वती शिव को समर्पित कर दी और महादेव उन्हें लेकर निर्जन वन में चले गये ॥१४॥ नर्मदा के तट पर पुष्पवाटिका में रति के उपयुक्त पुष्प-चन्दन-चर्चित शय्या का निर्माण कर शिव पार्वती के साथ रमण करने लगे ॥१५॥ हे नारद! देवों के दिव्य वर्ष से एक सहस्र वर्ष तक वे वहाँ विपरीत आदि महान् शृंगार (रति) करने में जुटे रहे। ॥१६॥ दुर्गा (पार्वती) के अंगों के स्पर्श मात्र से ही शिव काम-मूर्च्छित हो गए

---

१ क. कर्म०।

दुर्गाङ्गस्पर्शमात्रेण मदनान्मूर्च्छितः शिवः । मूर्च्छिता सा शिवस्पर्शाद्बुबुधे न दिवानिशम् ॥१७॥
हंसकारण्डवाकीर्णे पुंस्कोकिलरुताकुले । नानापुष्पविकासाढ्ये भ्रमरध्वनिगुञ्जिते ॥१८॥
सुगन्धिकुसुमाश्लेषिवायुना सुरभीकृते । अतीव सुखदे रम्ये सर्वजन्तुविवर्जिते ॥१९॥
दृष्ट्वा तयोस्तच्छृङ्गारं चिन्तां प्रापुः सुराः पराम् । ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ययुर्नारायणान्तिकम् ॥२०॥
तं नत्वा कथयामास ब्रह्मा वृत्तान्तमीप्सितम् । संतस्थुर्देवताः सर्वाश्चित्रपुत्तलिका यथा ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

सहस्रवर्षपर्यन्तं दैवमानेन शंकरः । रतौ रतश्च निश्चेष्टो न योगी विरराम ह ॥२२॥
मैथुनस्य विरामे च दम्पत्योर्जगदीश्वर । किंभूतं भविताऽपत्यं तन्नः कथितुमर्हसि ॥२३॥

श्रीभगवानुवाच

चिन्ता नास्ति जगद्धातः सर्वं भद्रं भविष्यति । मयि ये शरणापन्नास्तेषां दुःखं कुतो विधे ॥२४॥
येनोपायेन तद्वीर्यं भूमौ पतति निश्चितम् । तत्कुरुष्व प्रयत्नेन सार्धं देवगणेन च ॥२५॥
यदा च शंभोर्वीर्यं तत्पार्वत्या उदरे पतेत् । ततोऽपत्यं च भविता सुरासुरविमर्दकम् ॥२६॥
ततः शक्रादयः सर्वे सुरा नारायणाज्ञया । प्रययुर्नर्मदातीरं ययौ ब्रह्मा निजालयम् ॥२७॥

और पार्वती भी शिव के अंगस्पर्श से मूर्च्छित हो गयीं। उस समय उन्हें दिनरात का ज्ञान नहीं रहा ॥१७॥ हंस और कारण्डव (बत्तख) पक्षियों से व्याप्त नर कोकिल की ध्वनि से निनादित, अनेक भाँति के विकसित पुष्पों से सुशोभित, भौंरों के गुंजार से गुंजित एवं सुगन्धित पुष्पों से सम्पृक्त वायु द्वारा सुगन्धित, अति सुखदायक, रमणीय और समस्त जीव-जन्तुओं से शून्य स्थान में उन दोनों का शृंगार-विहार देखकर देवों को बड़ी चिन्ता हुई। वे लोग ब्रह्मा को आगे करके नारायण (विष्णु) के यहाँ गये ॥१८-२०॥ ब्रह्मा ने उन्हें नमस्कार कर अभीष्ट समाचार कह सुनाया और देवता लोग कठपुतली की भाँति खड़े रहे ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—सहस्र दिव्य वर्ष पर्यन्त शंकर रति-क्रीड़ा में लगकर निश्चेष्ट हो गये हैं। वे योगी (मैथुन से) विराम नहीं कर रहे हैं ॥२२॥ हे जगदीश्वर! उन दोनों दम्पति के मैथुन का अवसान होने पर कैसी सन्तान उत्पन्न होगी, मुझे बताने की कृपा करें ॥२३॥

श्री भगवान् बोले—हे जगत् के धाता! हे विधे! इस बात की चिन्ता न करो, सब कुछ अच्छा ही होगा। क्योंकि जो मेरी शरण में आते हैं, उन्हें दुःख कैसे हो सकता है? ॥२४॥ जिस किसी उपाय से शिव का वीर्य्य पृथ्वी पर गिर जाये, वही प्रयत्नपूर्वक देवों को साथ लेकर करो ॥२५॥ क्योंकि शिव का वीर्य यदि पार्वती के उदर में पड़ेगा, तो देवों, और राक्षसों का नाश करने वाला पुत्र उत्पन्न होगा ॥२६॥ अनन्तर इन्द्र आदि देवगण नारायण की आज्ञा से नर्मदा के तट पर पहुँचे और ब्रह्मा अपने निवास को गये ॥२७॥ वहाँ पर्वतों की घाटी के बाहर ही देवगण अति खिन्न मन और

तत्रैव पर्वतद्रोणीबहिर्देशे सुराः पराः । विषण्णवदनाः सर्वे बभूवुर्भयकातराः ॥२८॥
शक्रः कुबेरमवदत्कुबेरो वरुणं तथा । समीरणं च वरुणो यमं चैव समीरणः ॥२९॥
हुताशनं यमश्चैव भास्करं च हुताशनः । चन्द्रं तथा भास्करश्च त्वीशानं चन्द्र एव च ॥३०॥
एवं देवाः प्रेरयन्ति देवांश्च रतिभञ्जने । हरशृङ्गारभङ्गं च कुर्वित्युक्त्वा परस्परम् ॥३१॥
द्वारि स्थितो वक्रशिराः शक्रः प्राह महेश्वरम् ॥३२॥

इन्द्र उवाच

किं करोषि महादेव योगीश्वर नमोऽस्तु ते । जगदीश जगद्बीज भक्तानां भयभञ्जन ॥३३॥
हरिर्जगामेत्युक्त्वा तमाजगाम च भास्करः । उवाच भीतो द्वारस्थो भयार्तो वक्रचक्षुषा ॥३४॥

सूर्य उवाच

किं करोषि महादेव जगतां परिपालक । सुरश्रेष्ठ महाभाग पार्वतीश नमोऽस्तु ते ॥३५॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीसूर्यः स जगाम भयात्ततः । आजगाम तथा चन्द्र 'अवोचद्वक्रकंधरः ॥३६॥

चन्द्र उवाच

किं करोषि त्रिलोकेश त्रिलोचन नमोऽस्तु ते । स्वात्माराम स्वयंपूर्ण पुण्यश्रवणकीर्तन ॥३७॥

भय से कातर होकर अवस्थित हुए ॥२८॥ पश्चात् इन्द्र ने कुबेर से कहा और कुबेर ने वरुण से, वरुण ने वायु से, वायु ने यम से, यम ने अग्नि से, अग्नि ने सूर्य से, सूर्य ने चन्द्रमा से और चन्द्र ने ईशान से कहा ॥२९-३०॥ इस भाँति देवों ने शंकर की रति भंग करने के लिए आपस में एक-दूसरे से कह रहे थे कि 'तुम शिव की रति-क्रीड़ा भंग करो।' ॥३१॥ इन्द्र ने द्वार पर खड़े होकर शिर दूसरी ओर घुमाये, महेश्वर से कहा ॥३२॥

इन्द्र बोले—हे महादेव ! हे योगीश्वर ! आपको नमस्कार है। हे जगदीश ! हे जगत् के कारण ! हे भक्तों का भय दूर करने वाले ! आप यह क्या कर रहे हैं। इन्द्र इतना कह कर चले गये। पश्चात् भास्कर (सूर्य) ने द्वार पर खड़े होकर भय से पीडित हो नेत्र दूसरी ओर किए कहा—

सूर्य्य बोले—हे महादेव ! हे जगत् का पालन करने वाले ! हे सुरश्रेष्ठ ! हे महाभाग ! हे पार्वती-पते ! आपको नमस्कार है। आप यह क्या कर रहे हैं ? इतना कह कर सूर्य भय वश वहाँ से चले गये। अनन्तर चन्द्रमा आये और कन्धे को दूसरी ओर मोड़कर कहने लगे ॥३३-३६॥

चन्द्र बोले—हे तीनों लोकों के अधीश्वर ! हे त्रिलोचन ! तुम्हें नमस्कार है। हे आत्मा में रमण करने वाले ! हे अपने आप में पूर्ण ! हे कानों के लिए पवित्रकारक कीर्तन वाले ! आप यह क्या कर रहे हैं ॥३७॥ इतना

---

१ क. चन्नतकंधरः ।

इत्येवमुक्त्वा भीतश्च विरराम निशापतिः । समीरणोऽपि द्वारस्थः संवीक्ष्योवाच सादरम् ॥३८॥

पवन उवाच

किं करोषि जगन्नाथ जगद्बन्धो नमोऽस्तु ते । धर्मार्थकाममोक्षाणां बीजरूप सनातन ॥३९॥
इत्येवं स्तवनं श्रुत्वा योगज्ञानविशारदः । त्यक्तुकामो न तत्याज शृङ्गारं पार्वतीभयात् ॥४०॥
दृष्ट्वा सुरान्भयार्तांश्च पुनः स्तोतुं समुद्यतान् । विजहौ सुखसंभोगं कण्ठलग्नां च पार्वतीम् ॥४१॥
उत्तिष्ठतो महेशस्य त्रासलज्जायुतस्य च । भूमौ पपात तद्वीर्यं ततः स्कन्दो बभूव ह ॥४२॥
पश्चात्तां कथयिष्यामि कथामतिमनोहराम् । स्कन्दजन्मप्रसङ्गे च सांप्रतं वाञ्छितं शृणु ॥४३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपति० नारदना० प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

नारायण उवाच

त्यक्त्वा रतिं महादेवो ददर्श पुरतः सुरान् । पलायध्वमिति प्राह कृपया पार्वतीभयात् ॥१॥
देवाः पलायिता भीताः पार्वतीशापहेतुना । सर्वब्रह्माण्डसंहर्ता चकम्पे पार्वतीभयात् ॥२॥

कह कर रात्रिपति (चन्द्रमा) भय के मारे चुप हो गए। उपरान्त वायु द्वार पर स्थित होकर सादर कहने लगे ॥३८॥

पवन बोले—हे जगन्नाथ ! हे जगत् के बन्धो ! आपको नमस्कार है आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के बीज एवं सनातन हैं। यह क्या कर रहे हैं ॥३९॥ योग-ज्ञान में निपुण शिव जी इन स्तुतियों को सुन कर शृंगार का त्याग करना चाहते हुए भी पार्वती जी के भय से त्याग न कर सके ॥४०॥ भय से आर्त होते हुए शिव जी ने भी देखा कि देवता लोग पुनः स्तुति करने के लिए उद्यत हो रहे हैं—इसलिए सुख सम्भोग का त्याग कर गले लगी हुई पार्वती का भी त्याग कर दिया ॥४१॥ भय और लज्जा से युक्त महेश्वर के उठते समय उनका वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा जिससे कार्तिकेय का जन्म हुआ ॥४२॥ पश्चात् उस मनोहर कथा को सुनायेंगे, सम्प्रति कार्तिकेय के जन्म के प्रसंग में वांछनीय बातें सुनो ॥४३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण के संवाद में पहला अध्याय समाप्त ॥१॥

अध्याय २

देवताओं को पार्वती का शाप

नारायण बोले—महादेव ने सुख त्याग कर सामने देवों को देखते ही पार्वती के भय से कृपापूर्वक कहा—'तुम लोग शीघ्र भाग जाओ' ॥१॥ पार्वती के शाप के कारण डरे हुए देवगण भाग निकले और समस्त ब्रह्माण्ड के संहर्ता शिव भी पार्वती के भय से कांपने लगे ॥२॥ दुर्गा ने शय्या से उठकर सामने देवों

तत्पादुत्थाय सा दुर्गा न च दृष्ट्वा पुरः सुरान् । समुत्थितं कोपवह्निं स्तम्भयामास देहतः ॥३॥
अद्यप्रभृति ते देवा व्यर्थवीर्या भवन्त्विति । शशाप देवी तान्देवानतिरुष्टा बभूव ह ॥४॥
ततः शिवः शिवां दृष्ट्वा क्रोधसंरक्तलोचनाम् । रुदतीं नम्रवदनां लिखन्तीं धरणीतलम् ॥५॥
शिवस्तां दुःखितां दृष्ट्वा क्रोधसंरक्तलोचनाम् । हस्ते गृहीत्वा देवेशो वासयामास वक्षसि ॥६॥
अतीव भीतः संत्रस्त उवाच मधुरं वचः । ॥७॥

शंकर उवाच

कथं रुष्टा गिरिश्रेष्ठकन्ये धन्ये मनोहरे । मम सौभाग्यरूपे च प्राणाधिष्ठातृदेवते ॥८॥
किं तेऽभीष्टं करिष्यामि वद मां जगदम्बिके । ब्रह्माण्डसंघे निखिले किमसाध्यमिहाऽऽवयोः ॥९॥
अहो निरपराधं मां प्रसन्ना भवसुन्दरि । दैवादज्ञातदोषस्य शान्तिं मे कर्तुमर्हसि ॥१०॥
त्वया युक्तः शिवोऽहं च सर्वेषां शिवदायकः । त्वया विना हीश्वरश्च शवतुल्योऽशिवः सदा ॥११॥
प्रकृतिस्त्वं च बुद्धिस्त्वं शक्तिस्त्वं च क्षमा दया । तुष्टिस्त्वं च तथा पुष्टिः शान्तिस्त्वं क्षान्तिरेव च ॥१२॥
क्षुत्त्वं छाया तथा निद्रा तन्द्रा श्रद्धा सुरेश्वरि । सर्वाधारस्वरूपा त्वं सर्वबीजस्वरूपिणी ॥१३॥
स्मितपूर्वं वद वचः सांप्रतं सरसं शिवे । त्वत्कोपविषसंदग्धं द्रुतं जीवय मां मृतम् ॥१४॥
शंकरस्य वचः श्रुत्वा क्षमायुक्ता च पार्वती । उवाच मधुरं देवी हृदयेन विदूयता ॥१५॥

को नहीं देखा इसलिए भड़के हुए क्रोधाग्नि को देह में रोक लिया ॥३॥ किन्तु अति रुष्ट होकर देवी ने देवों को शाप दे ही दिया कि—वे देवता आज से निष्फलवीर्य हो जायें (अर्थात् उनके वीर्य से कोई सन्तान न हो) ॥४॥ अनन्तर शिव ने रक्तनेत्र शिवा (पार्वती) को देखा जो क्रोध से नीचे मुख करके रोदन कर रही थीं एवं पृथ्वी पर लिख रही थीं। देवेश्वर शिव ने पार्वती को क्रोध से लाल नेत्र और दुःखी देख कर उनका हाथ पकड़ लिया और अपनी ओर खींच कर उन्हें हृदय से लगा लिया ॥५-६॥ उन्होंने अत्यन्त भयभीत होकर मधुर वचन कहा।

शंकर बोले—हे उत्तम पर्वत की कन्ये! तुम धन्य हो और मन हरण करने वाली हो। तुम मेरा सौभाग्य रूप और मेरे प्राणों की अधिष्ठात्री हो। हे जगदम्बिके! तुम्हारी क्या इच्छा है? कहो, मैं करने के लिए तैयार हूं ॥७-८॥ इस समस्त ब्रह्माण्ड-समूह में हम दोनों के लिए असाध्य ही क्या है ॥९॥ अतः हे सुन्दरि! मुझ निरपराध पर प्रसन्न हो जाओ। दैवात् मुझसे अनजाने में अपराध हो गया। उसे क्षमा करो। अहो! तुम से युक्त होने पर ही मैं शिव हूं और सबके लिए कल्याणदायक हूँ ॥१०॥ तुम्हारे बिना मैं सदा शव के समान और अकल्याणकर्ता हूँ। हे सुरेश्वरि! तुम प्रकृति हो, बुद्धि हो एवं शक्ति, क्षमा, दया, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, क्षान्ति, क्षुधा, छाया, निद्रा, तन्द्रा और श्रद्धा रूप हो ॥११-१२॥ हे शिवे! सब की आधार और सबकी बीजस्वरूप हो। अतः इस समय मन्द मुसुकान समेत सरस वाणी बोलो ॥१३॥ तुम्हारे कोप रूपी विष से जल कर मैं मृतक हो गया हूँ, मुझे शीघ्र जीवित करो ॥१४॥ शङ्कर की ऐसी बातें सुन कर क्षमाशील पार्वती ने व्यथित हृदय से मधुर वचन कहा ॥१५॥

पार्वत्युवाच

किं त्वाऽहं कथयिष्यामि सर्वज्ञं सर्वरूपिणम् । स्वात्मारामं पूर्णकामं सर्वदेहेष्ववस्थितम् ॥१६॥
कामिनी मानसं काममप्रज्ञं स्वामिनं वदेत् । सर्वेषां हृदयज्ञं च हृदीष्टं कथयामि किम् ॥१७॥
सुगोप्यं सर्वनारीणां लज्जाजननकारणम् । अकथ्यमपि सर्वासां महेश कथयामि ते ॥१८॥
सुखेषु मध्ये स्त्रीणां च विभवेषु सुरेश्वर । सत्पुंसा सह संभोगो निर्जनेषु परं सुखम् ॥१९॥
तद्भङ्गेन च यद्दुःखं तत्समं नास्ति च स्त्रिया । कान्तानां कान्तविच्छेदशोकः परमदारुणः ॥२०॥
कृष्णपक्षे यथा चन्द्रः क्षीयमाणो दिने दिने । तथा कान्तं विना कान्ता क्षीणा कान्त क्षणे क्षणे ॥२१॥
चिन्ता ज्वरश्च सर्वेषामुपतापश्च वाससाम् । साध्वीनां कान्तविच्छेदस्तुरगानां च मैथुनम् ॥२२॥
रतिभङ्गे दुःखमेकं द्वितीयं वीर्यपातनम् । दुःखातिरेकि दुःखं च तृतीयमनपत्यता ॥२३॥
त्रैलोक्यकान्तं कान्तं त्वां लब्ध्वाऽपि न च मे सुतः । या स्त्री पुत्रविहीना च जीवनं तन्निरर्थकम् ॥२४॥
जन्मान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम् । सद्वंशजातपुत्रश्च परत्रेह सुखप्रदः ॥२५॥
सुपुत्रः स्वामिनोंऽशश्च स्वामितुल्यसुखप्रदः । कुपुत्रश्च कुलाङ्गारो मनस्तापाय केवलम् ॥२६॥
स्वामी स्वांशेन स्वस्त्रीणां गर्भे जन्म लभेद्ध्रुवम् । साध्वी स्त्री मातृतुल्या च सततं हितकारिणी ॥२७॥

पार्वती बोलीं— मैं तुमसे क्या कहूँ, तुम सर्वज्ञ, सर्वरूप, आत्मा में रमण करने वाले, पूर्ण काम और सब की देह में अवस्थित रहते हो ॥१६॥ कामिनी अपना मनोभाव अल्पज्ञ पति से कहती है और तुम तो सब के हृदय के जानने वाले हो अतः तुमसे मनोऽभिलाषित क्या कहूँ ॥१७॥ हे महेश! समस्त स्त्रियों के लिए अतिगोप्य, लज्जा का जनक तथा अकथनीय होने पर भी मैं तुमसे कह रही हूँ ॥१८॥ हे सुरेश्वर! सब प्रकार के सुख और समस्त ऐश्वर्यों के बीच निर्जन स्थानों में सत्पुरुष के साथ सम्भोग करना ही स्त्रियों का परम सुख है ॥१९॥ और उसके भंग होने के समान अन्य दुःख स्त्रियों को नहीं है क्योंकि स्त्रियों को स्वामी का वियोग-शोक परम दारुण होता है ॥२०॥ हे कान्त! जिस प्रकार कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा दिन-दिन क्षीण होता है उसी भाँति कान्त के बिना कान्ता भी क्षण-क्षण में क्षीण होती रहती है ॥२१॥ चिन्ता सभी के लिए ज्वररूप दुःख है, वस्त्रों के लिए उपताप (गर्मी) दुःख है, पतिव्रताओं के लिए कान्त-वियोग दुःख है और घोड़ों के लिए मैथुन दुःख है ॥२२॥ रति भंग होना मेरा पहला दुःख है, दूसरा दुःख आपका (भूमि पर) वीर्यपात होना और यह तीसरा महान् दुःख है कि कोई सन्तान नहीं है ॥२३॥ तीनों लोकों के स्वामी आपको पतिरूप में प्राप्त कर के भी मेरे कोई पुत्र नहीं है। जो स्त्री पुत्रहीन होती है, उसका जीवन निरर्थक होता है ॥२४॥ तप और दान करने से उत्पन्न पुण्य जन्मान्तर में सुख देता है और सत्कुल में उत्पन्न हुआ पुत्र लोक-परलोक दोनों में सुख प्रदान करता है ॥२५॥ स्वामी के अंश से उत्पन्न सत्पुत्र स्वामी के समान ही सुख प्रदान करता है और कुपुत्र तो कुल का अंगार रूप है। वह केवल मन को संतप्त ही करता है ॥२६॥ उत्तम स्त्रियों के गर्भ में उनके स्वामी अपने अंश से जन्म ग्रहण करते हैं और पतिव्रता स्त्री माता के समान निरन्तर

असाध्वी वैरितुल्या च शश्वत्संतापदायिनी । मुखदुष्टा योनिदुष्टा चासाध्वीति त्रिधा स्मृता ॥२८॥
कमुपायं करिष्यामि वद योगीश्वरेश्वर । उपायसिन्धो तपसां सर्वेषां च फलप्रद ॥२९॥
इत्युक्त्वा पार्वतीदेवी नम्रवक्त्रा बभूव ह । प्रहस्य शंकरो देवो बोधयामास पार्वतीम् ॥३०॥
सत्पुत्रबीजं सुखदं तापनाशनकारणम् । मितं स्निग्धं सुरुचिरं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥३१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

महादेव उवाच

शृणु पार्वति वक्ष्यामि तव भद्रं भविष्यति । उपायतः कार्यसिद्धिर्भवत्येव जगत्त्रये ॥१॥
सर्ववाञ्छितसिद्धेस्तु बीजरूपं सुमङ्गलम् । मनसः प्रीतिजननमुपायं कथयामि ते ॥२॥
हरेराराधनं कृत्वा व्रतं कुरु वरानने । व्रतं च पुण्यकं नाम वर्षमेकं करिष्यसि ॥३॥
महाकठोरबीजं च वाञ्छाकल्पतरुं परम् । सुखदं पुण्यदं सारं पुत्रदं सर्वसौख्यदम् ॥४॥
नदीनां च यथा गङ्गा देवानां च हरिर्यथा । वैष्णवानां यथाऽहं च देवीनां त्वं यथा प्रिये ॥५॥

हित करने वाली होती है ॥२७॥ और असाध्वी (व्यभिचारिणी) स्त्री शत्रु के समान निरन्तर सन्ताप प्रदान करने वाली होती है। मुख की दुष्टा, योनि-दुष्टा और असाध्वी भेद से कुलटा तीन प्रकार की होती है ॥२८॥ हे योगीश्वरेश्वर! आप उपाय के सागर हैं और सभी तप का फल प्रदान करने वाले हैं, अतः मुझे बताइए ! मैं क्या उपाय करूँ ॥२९॥ इतना कह कर देवी पार्वती ने अपना मुख नीचे कर लिया। अनन्तर शिव हँस कर पार्वती को समझाने लगे ॥३०॥ सत्पुत्र होने का कारण, सुखप्रद, तापनाशक, अल्प, स्नेहमय और अत्यन्त रोचक बातें कहना प्रारम्भ किया ॥३१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में
दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

अध्याय ३

पुत्र-प्राप्त्यर्थ पार्वती को पुण्यक व्रत का उपदेश

श्री महादेव जी बोले—हे पार्वती ! सुनो ! मैं कह रहा हूँ, उससे तुम्हारा कल्याण होगा । तीनों लोकों में उपाय द्वारा ही कार्य-सिद्धि होती है ॥१॥ मैं तुम्हें उपाय बता रहा हूं, जो समस्त मनोरथ सिद्धि का बीज, अति मंगल और मन में प्रीति उत्पन्न करने वाला है ॥२॥ हे वरानने ! भगवान् की आराधना करके तुम एक वर्ष तक पुण्यक नामक व्रत सुसम्पन्न करो। वह महाकठोर बीज रूप, मनोरथ का श्रेष्ठ कल्पवृक्ष, सुखद, पुण्यप्रद, सारभाग, पुत्रदायक और समस्त सौख्य का प्रदाता है ॥३-४॥ हे प्रिये ! जिस प्रकार नदियों में गंगा, देवों में विष्णु, वैष्णवों में मैं, देवियों में तुम, वर्णों में ब्राह्मण, तीर्थों में पुष्कर, पुष्पों में पारिजात, पत्रों में तुलसी, पुण्य

[1]वर्णानां च यथा विप्रस्तीर्थानां पुष्करं यथा। पुष्पाणां पारिजातं च पत्राणां तुलसी यथा ॥६॥
यथा पुण्यप्रदानां च तिथिरेकादशी स्मृता। रविवारश्च वाराणां यथा पुण्यप्रदः शिवे ॥७॥
मासानां मार्गशीर्षश्चाप्यृतूनां माधवो यथा। संवत्सरो वत्सराणां युगानां च कृतं यथा ॥८॥
विद्याप्रदश्च पूज्यानां गुरूणां जननी यथा। साध्वी पत्नी यथाऽऽप्तानां विश्वस्तानां मनो यथा ॥९॥
यथा धनानां रत्नं च प्रियाणां च यथा पतिः। यथा पुत्रश्च बन्धूनां वृक्षाणां कल्पपादपः ॥१०॥
फलानां वै चूतफलं वर्षाणां भारतं यथा। वृन्दावनं वनानां चशतरूपा च योषिताम् ॥११॥
यथा काशी पुरीणां च सूर्यस्तेजस्विनां यथा। [2]यथा शशी खगानां च सुन्दराणां च मन्मथः ॥१२॥
शास्त्राणां च यथा वेदाः सिद्धानां कपिलो यथा। हनूमान्वानराणां च क्षेत्राणां ब्राह्मणाननम् ॥१३॥
यशोदानां यथा विद्या कविता च मनोहरा। [3]आकाशो व्यापकानां च ह्यङ्गानां लोचनं यथा ॥१४॥
विभवानां हरिकथा सुखानां हरिचिन्तनम्। स्पर्शानां पुत्रसंस्पर्शो हिंस्राणां च यथा खलः ॥१५॥
पापानां च यथा मिथ्या पापिनां पुंश्चली यथा। पुण्यानां च यथा सत्यं तपसां हरिसेवनम् ॥१६॥
यथा घृतं च गव्यानां यथा ब्रह्मा तपस्विनाम्। अमृतं भक्ष्यवस्तूनां सस्यानां धान्यकं यथा ॥१७॥
पुण्यदानां यथा तोयं शुद्धानां च हुताशनः। सुवर्णं तैजसानां च मिष्टानां प्रियभाषणम् ॥१८॥
गरुडः पक्षिणां चैव हस्तिनामिन्द्रवाहनम्। योगिनां च कुमारश्च देवर्षीणां च नारदः ॥१९॥
गन्धर्वाणां चित्ररथो जीवो बुद्धिमतां यथा। सुकवीनां यथा शुक्रः काव्यानां च पुराणकम् ॥२०॥
स्रोतस्वतां समुद्रश्च यथा पृथ्वी क्षमावताम्। लाभानां च यथा मुक्तिर्हरिभक्तिश्च संपदाम् ॥२१॥

देने वालों में एकादशी तिथि तथा वारों में रविवार पुण्यप्रद है ॥५-७॥ हे शिवे ! मासों में मार्गशीर्ष (अगहन), ऋतुओं में माधव (वसन्त) वत्सरों में संवत्सर, युगों में कृतयुग, पूज्यों में विद्यादाता, गुरुओं में माता, आप्त लोगों में पतिव्रता पत्नी, विश्वस्तों में मन, धनों में रत्न, प्रिय लोगों में पति, बन्धुओं में पुत्र, वृक्षों में कल्पवृक्ष, फलों में आम, वर्षों में भारतवर्ष, वनों में वृन्दावन, स्त्रियों में शतरूपा, पुरियों में काशी, तेजस्वियों में सूर्य, आकाश-चारियों में चन्द्रमा, सुन्दरों में कामदेव, शास्त्रों में वेद, सिद्धों में कपिल, वानरों में हनूमान्, क्षेत्रों में ब्राह्मणमुख, यशदायकों में विद्या और मनोहर कविता, व्यापकों में आकाश, अंगों में नेत्र, ऐश्वर्यों में भगवान् की कथा, सुखों में भगवान् का चिन्तन करना, स्पर्शों में पुत्र-स्पर्श, हिंसकों में खल (दुष्ट), पापों में मिथ्या, पापियों में पुंश्चली, पुण्यों में सत्य, तपों में हरि-सेवा, गव्यों में घी, तपस्वियों में ब्रह्मा, भक्ष्य वस्तुओं में अमृत, सस्यों में धान्य, पुण्य देनेवालों में जल, शुद्धों में अग्नि, तैजस पदार्थों में सुवर्ण, मीठी वस्तुओं में प्रिय भाषण, पक्षियों में गरुड़, हाथियों में ऐरावत, योगियों में कुमार, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ, बुद्धिमानों में जीव (बृहस्पति), उत्तम कवियों में शुक्र, काव्यों में पुराण, स्रोतों में समुद्र, क्षमाशीलों में पृथिवी, लाभों में मुक्ति, सम्पदाओं में हरिभक्ति, पवित्रों में वैष्णव, वर्णों (अक्षरों) में ओंकार, मन्त्रों में विष्णुमन्त्र, बीजों में

---

१ क. आश्रमाणां यथा भिक्षुस्ती०। २ ख. थेयन्दुः सुखदानां च। ३ क. आत्मा कालो व्या०।

पवित्राणां वैष्णवाश्च वर्णानां प्रणवो यथा। विष्णुमन्त्रश्च मन्त्राणां बीजानां प्रकृतिर्यथा ॥२२॥
विदुषां च यथा वाणी गायत्री छन्दसां यथा। यथा कुबेरो यक्षाणां सर्पाणां वासुकिर्यथा ॥२३॥
यथा पिता ते शैलानां गवां च सुरभिर्यथा। वेदानां सामवेदश्च तृणानां च यथा कुशः ॥२४॥
सुखदानां यथा लक्ष्मीर्मनो वै शीघ्रगामिनाम्। अक्षराणामकारश्च यथा तातो हितैषिणाम् ॥२५॥
शालग्रामश्च मूर्तीनां पक्षिणां विष्णुपञ्जरः। चतुष्पदानां पञ्चास्यो मानवो जीविनां यथा ॥२६॥
यथा स्वान्तं चेन्द्रियाणां मन्दाग्निश्च रुजां यथा। बलिनां च यथा शक्तिरहं शक्तिमतां यथा ॥२७॥
महान्विराट् च स्थूलानां सूक्ष्माणां परमाणुकः। यथेन्द्र आदितेयानां दैत्यानां च बलिर्यथा ॥२८॥
यथा दधीचिर्दातॄणां प्रह्लादश्चैव साधुषु। ब्रह्मास्त्रं च यथाऽस्त्राणां चक्राणां च सुदर्शनम् ॥२९॥
नृणां राजा रामचन्द्रो धन्विनां लक्ष्मणो यथा। सर्वाधारः सर्वसेव्यः सर्वबीजं च सर्वदः
सर्वसारो यथा कृष्णो व्रतानां पुण्यकं यथा ॥३०॥
व्रतं कुरु महाभागे त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। सर्वश्रेष्ठश्च पुत्रस्ते व्रतादेव भविष्यति ॥३१॥
व्रताराध्यश्च वै कृष्णः सर्वेषां वाञ्छितप्रदः। जनो यत्सेवनान्मुक्तः पितृभिः कोटिभिः सह ॥३२॥
हरिमन्त्रं गृहीत्वा च हरिसेवां करोति यः। भारते जन्म सफलं स्वात्मनः स करोति च ॥३३॥
उद्धृत्य कोटिपुरुषान्वैकुण्ठं याति निश्चितम्। श्रीकृष्णपार्षदो भूत्वा सुखं तत्रैव मोदते ॥३४॥
सहोदरान्स्वभृत्यांश्च स्वबन्धून्सहचारिणः। स्वस्त्रियश्च समुद्धृत्य भक्तो याति हरेः पदम् ॥३५॥

प्रकृति, विद्वानों में सरस्वती, छन्दों में गायत्री, यक्षों में कुबेर, सर्पों में वासुकि नाग, पर्वतों में तुम्हारे पिता हिमवान्, गौओं में सुरभि, वेदों में सामवेद, तृणों में कुश, सुख देनेवालों में लक्ष्मी, शीघ्रगामियों में मन, अक्षरों में अकार, हितैषियों में पिता, मूर्तियों में शालग्राम, आयुधों में सुदर्शन चक्र, चार पैर वालों में सिंह, जीवों में मानव, इन्द्रियों में अन्तःकरण, रोगों में मन्दाग्नि, बलवानों में शक्ति, शक्तिमानों में मैं, स्थूलों में महाविराट्, सूक्ष्मों में परमाणु, अदिति-पुत्रों (देवों) में इन्द्र, दैत्यों में बलि, दाताओं में दधीचि, साधुओं में प्रह्लाद, अस्त्रों में ब्रह्मास्त्र, चक्रों में सुदर्शन, मनुष्यों में राजा रामचन्द्र, धनुर्धारियों में लक्ष्मण और समस्त के आधार, सब के सेव्य, सब के बीज, सब कुछ देनेवाले और सबके निचोड़ श्रीकृष्ण, (जैसे सर्वश्रेष्ठ) हैं उसी भाँति व्रतों में पुण्यक व्रत है ॥८-३०॥ हे महाभागे! इस व्रत को सुसम्पन्न करो, जो तीनों लोकों में दुर्लभ है। इस व्रत के प्रभाव से तुम्हें श्रेष्ठपुत्र की प्राप्ति होगी ॥३१॥ इस व्रत में आराध्य देव भगवान् श्रीकृष्ण हैं जो सभी को मनोरथ प्रदान करते हैं और जिनकी सेवा करके मनुष्य अपनी करोड़ों पीढ़ियों समेत मुक्त हो जाता है ॥३२॥ भारत देश में जो भगवान् का मंत्र ग्रहण कर उनकी सेवा करता है, वह अपना जन्म सफल करता है ॥३३॥ और अपनी करोड़ों पीढ़ियों का उद्धार करके निश्चित रूप से वैकुण्ठ जाता है, वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण का पार्षद होकर आनन्द जीवन व्यतीत करता है ॥३४॥ सहोदरों (सगे भाइयों), अपने सेवक-वर्ग, बन्धुवर्ग, सहचारीगण एवं अपनी स्त्रियों का उद्धार करके भक्त भगवान् के लोक में चला जाता है ॥३५॥ हे गिरिजे! इसलिए भगवान् का अति दुर्लभ मन्त्र ग्रहण

तस्माद्गृहाण गिरजे हरेर्मन्त्रं सुदुर्लभम्। जप मन्त्रं व्रते तत्र पितृणां मुक्तिकारणम् ॥३६॥
इत्युक्त्वा शंकरो देवो गत्वा गिरिजया सह। शीघ्रं च जाह्नवीतीरं हरेर्मन्त्रं मनोहरम् ॥३७॥
तस्यै ददौ च संप्रीत्या कवचं स्तोत्रसंयुतम्। पूजाविधाननियमं कथयामास तां मुने ॥३८॥
इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नारायण उवाच

श्रुत्वा व्रतविधानं च दुर्गा संहृष्टमानसा। सर्वं व्रतविधानं च संप्रष्टुमुपचक्रमे ॥१॥

पार्वत्युवाच

सर्वं व्रतविधानं मां वद वेदविदां वर। हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो परात्पर ॥२॥
कानि व्रतोपयुक्तानि द्रव्याणि च फलानि च। समयं नियमं भक्ष्यं विधानं तत्फलं प्रभो ॥३॥
देहि मह्यं विनीतायै नियुक्तं सत्पुरोहितम्। पुष्पोपहारान्विप्रांश्च द्रव्याहरणकिंकरान् ॥४॥
अन्यानि चोपयुक्तानि मयाऽज्ञातानि यानि च। संनियोजय तत्सर्वं स्त्रीणां स्वामी च सर्वदः ॥५॥
पिता कौमारकाले च सदा पालनकारकः। भर्ता मध्ये सुतः शेषे त्रिधाऽवस्था सुयोषिताम् ॥६॥

कर उस व्रत में इसका जप करो, जो पितरों को मुक्त करता है। इतना कह शंकर जी ने गिरिजा के साथ शीघ्र गंगा-तट पर जाकर उन्हें भगवान् का मनोहर मंत्र प्रदान किया, और हे मुने ! सप्रेम कवच, स्तोत्र एवं पूजा-विधान का नियम भी बताया ॥३६-३८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपति-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

अध्याय ४

पुण्यक नामक व्रत का विधान

नारायण बोले—व्रत-विधान सुनने पर दुर्गा जी का चित्त अति प्रसन्न हो गया, उन्होंने सभी व्रत-विधान पूछना आरम्भ किया ॥१॥

पार्वती बोली—हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! हे नाथ ! हे करुणासिन्धो ! हे दीनबन्धो ! आप परे से भी परे हैं, अतः आप मुझे यह बताने की कृपा करें कि—इस व्रत के उपयुक्त कौन द्रव्य, हैं ? फल क्या हैं ? उसके समय, नियम, भक्ष्य, विधान और फल क्या हैं ? हे प्रभो ! मुझ विनीता को एक उत्तम पुरोहित, पुष्प लाने वाले ब्राह्मणों और द्रव्यों को जुटाने वाले सेवकों का वर्ग दीजिये ॥२-४॥ और अन्य जो कुछ इस व्रत के उपयुक्त हों, जिन्हें मैं नहीं जानती हूँ, वह सब प्रबन्ध कर दें क्योंकि स्त्रियों के लिए स्वामी सब कुछ प्रदान करता है ॥५॥ कुमारावस्था में स्त्री की रक्षा पिता करता है, मध्य काल में (युवती होने पर) भर्ता और शेष वृद्धावस्था में पुत्र रक्षक होता है, इस प्रकार उत्तम स्त्रियों की तीन अवस्थायें होती हैं ॥६॥ पिता प्राणोपम अपनी पुत्री को उत्तम पति के हाथ

तातोऽशोकः प्राणतुल्यां दत्त्वा सत्स्वामिने सुताम्। स्वामी निवृत्तिमाप्नोति संन्यस्य स्वसुते प्रियाम् ॥७॥
बन्धुत्रययुता या स्त्री सा च भाग्यवती परा। किंचिद्विहीना मध्या च सर्वहीनाऽधमा भुवि ॥८॥
एतेषां च समीपस्था प्रशंस्या सा जगत्त्रये। निन्दिताऽन्येषु संन्यस्ता सर्वमेतच्छ्रुतौ श्रुतम् ॥९॥
सर्वात्मा भगवांस्त्वं च सर्वसाक्षी च सर्ववित्। देहि मह्यं पुत्रवरं स्वात्मनिर्वृतिहेतुकम् ॥१०॥
स्वात्मबोधानुमानेन महात्मनि निवेदितम्। सर्वान्तराभिप्रायज्ञं[1] भवन्तं बोधयामि किम् ॥११॥
इत्युक्त्वा पार्वती प्रीत्या पपात स्वामिनः पदे। कृपासिन्धुश्च भगवान्प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१२॥

महादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि विधानं नियमं फलम्। फलानि चैव द्रव्याणि व्रतयोग्यानि यानि च ॥१३॥
विप्राणां शतकं शुद्धं फलपुष्पोपहारकम्। किंकराणां च शतकं द्रव्याहरणकारकम् ॥१४॥
दासीनां शतकं लक्षं नियुक्तं च पुरोहितम्। सर्वव्रतविधानज्ञं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥१५॥
प्रवरं हरिभक्तानां सर्वज्ञं ज्ञानिनां वरम्। सनत्कुमारं मत्तुल्यं गृहाण व्रतहेतवे ॥१६॥
देवि शुद्धे च काले च परं नियमपूर्वकम्। माघशुक्लत्रयोदश्यां व्रतारम्भः शुभः प्रिये ॥१७॥
गात्रं सुनिर्मलं कृत्वा शिरः संस्कारपूर्वकम्। उपोष्य पूर्वदिवसे वस्त्रं संशोध्य यत्नतः ॥१८॥

सौंप कर निश्चिन्त हो जाता है और स्वामी पुत्र को अपनी पत्नी सौंप कर निवृत्त होता है ॥७॥ इस प्रकार जो स्त्री इन तीन बन्धुओं से युक्त रहती है वह उत्तम भाग्यवती होती है, कुछ कमी वाली मध्यम प्रकार की भाग्यवती है और तीनों से हीन स्त्री पृथ्वी पर अधमा कही जाती है ॥८॥ इन तीनों (बन्धुओं) के समीप रहने वाली स्त्री तीनों लोकों में प्रशंसा का पात्र होती है और इनसे अन्य को सौंपी जाने वाली निन्दित होती है, यह सब वेद में सुना गया है ॥९॥ आप सब के आत्मा, भगवान्, सब के साक्षी और सब के वेत्ता हैं, अतः मुझे अपने सुख के लिए उत्तम पुत्र देने की कृपा करें ॥१०॥ अपने ज्ञान के अनुसार मैंने (आप) महानुभाव से निवेदन कर दिया है और सभी के आन्तरिक अभिप्राय को जानने वाले आपको मैं क्या बता सकती हूँ ॥११॥ इतना कह कर पार्वती अत्यन्त प्रेम से पति के चरण पर गिर पड़ीं, अनन्तर कृपासागर भगवान् महादेव ने कहना आरम्भ किया ॥१२॥

महादेव बोले—हे देवि! मैं (उस व्रत का) विधान, नियम, फल तथा व्रत के योग्य (भक्ष्य) फल और द्रव्य बता रहा हूँ, सुनो ॥१३॥ सौ शुद्ध ब्राह्मण फल-पुष्प-चयन के लिए चाहिए और द्रव्य आदि लाने के लिए सौ सेवक ॥१४॥ एक करोड़ दासियाँ तथा ऐसा पुरोहित नियुक्त होना चाहिए, जो समस्त व्रत-विधान के ज्ञाता, वेद-वेदांग के पारगामी विद्वान्, हरिभक्तों में श्रेष्ठ, और ज्ञानियों में सर्वज्ञ हो। अतः व्रत के लिए मेरे तुल्य सनत्कुमार को पुरोहित बनाओ ॥१५-१६॥ हे देवि! हे प्रिये! शुद्ध समय में अति नियम पूर्वक इसका आरम्भ होना चाहिए। इस व्रत के आरम्भ के लिए माघ-शुक्ल-त्रयोदशी शुभ मुहूर्त है ॥१७॥ शिर के

१ख. ज्ञं बोधज्ञं बो०।

अरुणोदयवेलायां तल्पादुत्थाय सुव्रती। मुखप्रक्षालनं कृत्वा स्नात्वा वै निर्मले जले ॥१९॥
आचम्य यत्नपूतो हि हरिस्मरणपूर्वकम्। दत्त्वाऽर्घ्यं हरये भक्त्या गृहमागत्य सत्वरम् ॥२०॥
धौते च वाससी धृत्वा ह्युपविश्याऽऽसने[1] शुचौ। आचम्य तिलकं धृत्वा समाप्य स्वाह्निकं पुनः ॥२१॥
घटं संस्थाप्य विधिवत्स्वस्तिवाचनपूर्वकम्। पुरोहितस्य वरणं पुरः कृत्वा प्रयत्नतः ॥२२॥
संकल्प्य वेदविहितं व्रतमेतत्समाचरेत्। व्रते द्रव्याणि नित्यानि चोपचारास्तु षोडश।
देयानि नित्यं देवेशि कृष्णाय परमात्मने ॥२३॥
आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। स्नानीयं मधुपर्कं च वस्त्राण्याभरणानि च ॥२४॥
सुगन्धिपुष्पधूपं च दीपनैवेद्यचन्दनम्। यज्ञसूत्रं च ताम्बूलं कर्पूरादिसुवासितम् ॥२५॥
द्रव्याण्येतानि पूजायाश्चाङ्गरूपाणि सुन्दरि। देवि किंचिद्विहीनेन चाङ्गहानिः प्रजायते ॥२६॥
अङ्गहीनं च यत्कर्म चाङ्गहीनो यथा नरः। अङ्गहीने च कार्ये च फलहानिः प्रजायते ॥२७॥
अष्टोत्तरशतं पुष्पं पारिजातस्य विष्णवे। देयं प्रतिदिनं दुर्गे स्वात्मनो रूपहेतवे ॥२८॥
श्वेतचम्पकपुष्पाणां लक्षमक्षतमीप्सितम्। प्रदेयं हरये भक्त्या वर्णसौन्दर्यहेतवे ॥२९॥
सहस्रपत्रपद्मानामक्षतं लक्षकं तथा। भक्त्या देयं च हरये मुखसौन्दर्यहेतवे ॥३०॥
अमूल्यरत्नरचितं दर्पणानां सहस्रकम्। देयं नारायणायैव नेत्रयोर्दीप्तिहेतवे ॥३१॥

संस्कार समेत शरीर को निर्मल और वस्त्र को शुद्ध करके पहले दिन उपवास करे ॥१८॥ पुनः दूसरे दिन अरुणोदयवेला में शय्या से उठकर उत्तम व्रती को चाहिए कि (दातून आदि से) मुख शुद्ध कर निर्मल जल में स्नान, आचमन, सप्रयत्न हरिस्मरण एवं भक्तिपूर्वक भगवान् को अर्घ्य दान कर के शीघ्र घर आवे और दो निर्मल वस्त्र धारण कर पवित्र आसन पर बैठे। आचमन, तिलक (चन्दन) और नित्य कर्म समाप्त करे। तत्पश्चात् पहले प्रयत्नपूर्वक पुरोहित का वरण करके स्वस्ति वाचन पूर्वक कलश स्थापन करे। फिर वेदानुसार संकल्प के साथ व्रत सुसम्पन्न करे, जिसमें नित्य सोलहो उपचार से पूजन किया जाता है। हे देवेशि ! ये सभी वस्तुएँ परमात्मा श्रीकृष्ण को नित्य समर्पित की जाती हैं। आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, मधुपर्क, वस्त्र, आभूषण, सुगन्धित पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन, यज्ञसूत्र (जनेऊ) और कर्पूरादि से सुवासित ताम्बूल ॥१९-२५॥ हे सुन्दरि ! इतने द्रव्य पूजा के अंग हैं। हे देवि ! पूजा के अंगभूत द्रव्यों (वस्तुओं) की कुछ कमी होने पर अंग-हानि होती है ॥२६॥ और अंगहीन कर्म अंगहीन पुरुष की भाँति ही होता है। अंगहीन कार्य में फल की हानि होती है ॥२७॥ हे दुर्गे ! अपने रूप के निमित्त पारिजात का एक-सौ आठ पुष्प भगवान् विष्णु को प्रतिदिन समर्पित करना चाहिए ॥२८॥ और रंग-सौंदर्य के लिए श्वेत चम्पा का एक लाख अक्षत पुष्प भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु को अर्पित करना चाहिए ॥२९॥ मुख-सौन्दर्य के निमित्त सहस्र पत्र वाले कमल का एक लाख अक्षत पुष्प भक्तिपूर्वक भगवान् को अर्पित करना चाहिए ॥३०॥ नेत्र की दीप्ति के लिए अमूल्य रत्नों का बना एक सहस्र दर्पण नारायण को अर्पित करे ॥३१॥ हे देवेशि ! नेत्र-सौन्दर्य के निमित्त

१क. ०ने कुशे। २क. ०व मालसौन्दर्यहे०।

नीलोत्पलानां लक्षं च देयं कृष्णाय भक्तितः। व्रताङ्गभूतं देवेशि चक्षुषो रूपहेतवे ॥३२॥
हिमालयोद्भवं लक्षं रुचिरं श्वेतचामरम्। प्रदेयं केशवायैव केशसौन्दर्यहेतवे ॥३३॥
अमूल्यरत्नरचितं पुटकानां सहस्रकम्। प्रदेयं गोपिकेशाय नासासौन्दर्यहेतवे ॥३४॥
बन्धूकपुष्पलक्षं च देयं राधेश्वराय च। [1]सौम्यौष्ठाधरयोश्चैवं [2]वर्णसौन्दर्यहेतवे ॥३५॥
मुक्ताफलानां लक्षं च दन्तसौन्दर्यहेतवे। देयं गोलोकनाथाय शैलजे भक्तिपूर्वकम् ॥३६॥
रत्नगेन्दुकलक्षं च गण्डसौन्दर्यहेतवे। महेश्वराय दातव्यं व्रते शैलेन्द्रकन्यके ॥३७॥
रत्नपाशकलक्षं च देयं ब्रह्मेश्वराय च। ओष्ठाधःस्थलरूपाय व्रती प्राणेशि भक्तितः ॥३८॥
कर्णभूषणलक्षं च रत्नसारविनिर्मितम्। देयं सर्वेश्वरायैव कर्णसौन्दर्यहेतवे ॥३९॥
माध्वीककलशानां च लक्षं रत्नविनिर्मितम्। देयं विश्वेश्वरायैव स्वरसौन्दर्यहेतवे ॥४०॥
सुधापूर्णं च कुम्भानां सहस्रं रत्ननिर्मितम्। देयं कृष्णाय देवेशि वाक्यसौन्दर्यहेतवे ॥४१॥
रत्नप्रदीपलक्षं च गोपवेषविधायिने। देयं किशोरवेषाय दृष्टिसौन्दर्यहेतवे ॥४२॥
धत्तूरकुसुमाकारं रत्नपात्रसहस्रकम्। देयं गोरक्षकायैव गलसौन्दर्यहेतवे ॥४३॥
सद्रत्नसाररचितं पद्मनालसहस्रकम्। देयं [3]चण्डकपालाय बाहुसौन्दर्यहेतवे ॥४४॥

भगवान् कृष्ण को एक लाख नीलकमल भक्ति समेत देना चाहिए, यह व्रत का अंगभूत है ॥३२॥ केश के सौन्दर्य के निमित्त हिमालय में उत्पन्न एवं रुचिर श्वेत चामर एक लाख की संख्या में भगवान् केशव को अर्पित करे ॥३३॥ नासिका-सौन्दर्य के लिए अमूल्य रत्नों का सुरचित एक सहस्र पुटक (डिब्बे) गोपिकाओं के ईश भगवान् श्रीकृष्ण को समर्पित करे ॥३४॥ सौम्य ओठों के वर्ण की सुन्दरता के निमित्त राधेश्वर भगवान् को एक लाख बन्धूक (दुपहरिया) पुष्प अर्पित करे ॥३५॥ हे शैलजे ! दाँतों के सुन्दर होने के लिए एक लाख मोती गोलोकनाथ भगवान् को भक्तिपूर्वक समर्पित करना चाहिए ॥३६॥ हे शैलेन्द्रकन्यके ! कपोल-सौन्दर्य के निमित्त एक लाख रत्नों के गेंद इस व्रत में महेश्वर को अर्पित करना चाहिए ॥३७॥ हे प्राणेशि ! ओंठ के निचले भाग के सुन्दर होने के लिए रत्नों के एक लाख पाशक भक्तिपूर्वक ब्रह्मेश्वर (भगवान् श्रीकृष्ण) को व्रती प्रदान करे ॥३८॥ कर्ण-सौन्दर्य के लिए रत्नों के सार भाग के बने एक लाख कान के भूषण सर्वेश्वर को अर्पित करना चाहिए ॥३९॥ स्वर-सौन्दर्य के निमित्त माध्वीक (महुवे के आसव) से भरे रत्नों के बने एक लाख कलश विश्वेश्वर को समर्पित करना चाहिए ॥४०॥ हे देवेशि ! वाक्य की सुन्दरता के लिए रत्नों के सुनिर्मित एक सहस्र सुधापूर्ण कलश भगवान् कृष्ण को समर्पित करना चाहिए ॥४१॥ आँखों की सुन्दरता के निमित्त एक लाख रत्नों के प्रदीप गोपवेशधारी बालमुकुन्द भगवान् को समर्पित करे ॥४२॥ गले के सौन्दर्य के निमित्त धतूर पुष्प के समान बने रत्नों के एक सहस्र पात्र गोरक्षक भगवान् को प्रदान करे ॥४३॥ बाहु की सुन्दरता के लिए उत्तम रत्नों के सार भाग से रचित एक सहस्र कमलनाल चण्डकपाल को अर्पित करना चाहिए ॥४४॥ हे नारायणि ! हाथ की सुन्दरता के निमित्त एक लाख

१क. स्पष्टौष्ठा० । २क. बहुसौ० । ३क. तन्तुक० क. स्वर्णक० ।

लक्षं च रक्तपद्मानां करसौन्दर्यहेतवे। देयं गोपाङ्गनेशाय नारायणि हरिव्रते ॥४५॥
अङ्गुलीयकलक्षं च रत्नसारविनिर्मितम्। अङ्गुलीनां च रूपार्थं देयं देवेश्वराय च ॥४६॥
मणीन्द्रसारलक्षं च श्वेतवर्णं मनोहरम्। देयं मुनीन्द्रनाथाय नखसौन्दर्यहेतवे ॥४७॥
सद्रत्नसारहाराणां लक्षं चातिमनोहरम्। देयं मदनमोहाय वक्षःसौंदर्यहेतवे ॥४८॥
सुपक्वश्रीफलानां च लक्षं च सुमनोहरम्। देयं [1]सिद्धेन्द्रनाथाय स्तनसौन्दर्यहेतवे ॥४९॥
सद्रत्नवर्तुलाकारपत्रलक्षं मनोहरम्। देयं [2]पद्मालयेशाय देहसौन्दर्यहेतवे ॥५०॥
सद्रत्नसाररचितं नाभीनां च सहस्रकम्। प्रदेयं [3]पद्मनाभाय नाभिसौन्दर्यहेतवे ॥५१॥
सद्रत्नसाररचितं रथचक्रसहस्रकम्। नितम्बसौन्दर्यार्थं च देयं वै चक्रपाणये ॥५२॥
[4]सुवर्णरम्भास्तम्भानां लक्षं च सुमनोहरम्। प्रदेयं श्रीनिवासाय श्रोणिसौन्दर्यहेतवे ॥५३॥
शतपत्रस्थलाब्जानां लक्षमम्लानमक्षतम्। प्रदेयं पद्मनेत्राय पादसौन्दर्यहेतवे ॥५४॥
सुवर्णरचितानां च खञ्जनानां सहस्रकम्। गतिसौन्दर्यहेत्वर्थं देयं लक्ष्मीश्वराय च ॥५५॥
राजहंससहस्रं च गजेन्द्राणां सहस्रकम्। सुवर्णरचितं देयं हरये गतिहेतवे ॥५६॥
सुवर्णच्छत्रलक्षं च देयं नारायणाय च। विचित्रं रत्नसारेण मूर्धसौन्दर्यहेतवे ॥५७॥

रक्तकमल भगवान् के इस व्रत में गोपांगनाओं के ईश भगवान् कृष्ण को सादर समर्पित करे ॥४५॥ अंगुलियों के सौन्दर्य के लिए रत्नों के सार भाग से सुनिर्मित एक लाख अंगूठियाँ देवेश्वर को प्रदान करना चाहिए ॥४६॥ नखों के सौन्दर्य के लिए उत्तम मणियाँ जो श्वेत वर्ण और मनोहर हों, एक लाख की संख्या में मुनीन्द्रनाथ (भगवान्) को समर्पित करे ॥४७॥ वक्षःस्थल के सौन्दर्य निमित्त उत्तम रत्नों के सारभाग के बने मनोहर एक लाख हार मदनमोहन भगवान् को समर्पित करने चाहिए ॥४८॥ स्तन-सौन्दर्य के लिए अत्यन्त पके और अति मनोहर एक लाख श्रीफल (बेल) सिद्धेन्द्रनाथ (भगवान्) को प्रदान करे ॥४९॥ देह-सौन्दर्य के लिए उत्तम रत्नों के गोलाकार और अति मनोहर एक लाख पत्र कमलालय के अधीश्वर (भगवान्) को सादर समर्पित करे ॥५०॥ नाभि की सुन्दरता के लिए उत्तम रत्नों के सारभाग से बनी एक सहस्र नाभि पद्मनाभ (भगवान्) को समर्पित करनी चाहिए ॥५१॥ नितम्ब-सौन्दर्य के लिए उत्तम रत्नों के सारभाग से बने एक सहस्र रथचक्र चक्रपाणि भगवान् को प्रदान करने चाहिए ॥५२॥ जघन-सौन्दर्य के लिए सुवर्ण के बने अति मनोहर एक लाख कदली-स्तम्भ श्रीनिवास (भगवान्) को प्रदान करना चाहिए ॥५३॥ चरण-सौन्दर्य के निमित्त एक लाख निर्मल और अक्षत स्थलकमल कमलनेत्र भगवान् को समर्पित करना चाहिए ॥५४॥ गति (चाल) की सुन्दरता के निमित्त सुवर्णरचित एक सहस्र खंजन (पक्षी) लक्ष्मीश्वर भगवान् को सादर अर्पित करे ॥५५॥ गति (चाल) के लिए सुवर्ण रचित एक सहस्र राजहंस और एक सहस्र गजेन्द्र भगवान् को समर्पित करे ॥५६॥ मूर्धा (शिर) के सौन्दर्य के निमित्त सुवर्ण के एक लाख छत्र, जो उत्तम रत्नों के सार भाग से चित्र-विचित्र बने हों,

---

१. क. सौन्दयना० । २ क. ०रत्ननाभा० । ३ क. ०रत्नस्त० । ४ क. मस्तकम् ।

मालतीनां च कुसुममक्षतं लक्षमीश्वरि। देयं वृन्दावनेशाय हास्यसौन्दर्यहेतवे ॥५८॥
अमूल्यरत्नलक्षं च देयं नारायणाय वै। सुव्रते व्रतपूर्णार्थं शीलसौन्दर्यहेतवे ॥५९॥
स्वच्छस्फटिकसंकाशं मणीन्द्रश्रेष्ठलक्षकम्। देयं मुनीन्द्रनाथाय मनःसौन्दर्यहेतवे ॥६०॥
प्रवालसारसंकाशं मणिसारसहस्रकम्। देयं कृष्णाय भक्त्या च प्रियरागविवृद्धये ॥६१॥
माणिक्यसारलक्षं च देयं कृष्णाय यत्नतः। जन्मनः कोटिपर्यन्तं स्वामिसौभाग्यहेतवे ॥६२॥
कूष्माण्डं नारिकेलं च जम्बीरं श्रीफलं तथा। फलान्येतानि देयानि हरये पुत्रहेतवे ॥६३॥
रत्नेन्द्रसारलक्षं च देयं कृष्णाय यत्नतः। असंख्यजन्मपर्यन्तं स्वामिनो धनवृद्धये ॥६४॥
वाद्यं नानाप्रकारं च कांस्यतालादिकं परम्। व्रते संपत्तिवृद्धयर्थं श्रीहरिं श्रावयेद्व्रती ॥६५॥
पायसं पिष्टकं सर्पिः शर्कराक्तं मनोहरम्। प्रदेयं हरये भक्त्या स्वामिनो भोगवृद्धये ॥६६॥
सुगन्धिपुष्पमालानां लक्षमक्षतमीप्सितम्। प्रदेयं हरये भक्त्या हरिभक्तिविवृद्धये ॥६७॥
नैवेद्यानि च देयानि स्वादूनि मधुराणि च। श्रीकृष्णप्रीतिप्राप्त्यर्थं दुर्गे नानाविधानि च ॥६८॥
नानाविधानि पुष्पाणि तुलसीसंयुतानि च। श्रीकृष्णप्रीतये भक्त्या व्रते देयानि सुव्रते ॥६९॥
ब्राह्मणानां सहस्रं च प्रत्यहं भोजयेद्व्रती। स्वात्मनः सस्यवृद्धयर्थं व्रते जन्मनि जन्मनि ॥७०॥
पुष्पाञ्जलिशतं देयं नित्यं पूर्णं च पूजने। प्रणामशतकं देवि कर्तव्यं भक्तिवृद्धये ॥७१॥

नारायण को अर्पित करने चाहिए ॥५७॥ हे ईश्वरि! हास्य-सौन्दर्य के लिए मालती के एक लाख अक्षत पुष्प वृन्दावन के ईश को प्रदान करे ॥५८॥ हे सुव्रते! शील-सौन्दर्य के लिए और व्रत-परिपूरणार्थ एक लाख अमूल्य रत्न नारायण को समर्पित करने चाहिए ॥५९॥ मन के सौन्दर्य के निमित्त स्वच्छ स्फटिक के समान एक लाख श्रेष्ठ मणि मुनीन्द्रनाथ को प्रदान करने चाहिए ॥६०॥ प्रियानुराग-वृद्धि के निमित्त प्रवाल (मूंगा) के सार-भाग के समान मणियों का एक सहस्र सारभाग भगवान् कृष्ण को देना चाहिए ॥६१॥ करोड़ों जन्म पर्यन्त स्वामी (पति) का सौभाग्य प्राप्त रहे, इसके लिए एक लाख उत्तम माणिक्य भगवान् श्रीकृष्ण को भक्तिपूर्वक सप्रयत्न अर्पित करे ॥६२॥ पुत्र की कामना से कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) नारियल, जम्बीर (नीबू) और श्रीफल (बेल) इतने फल भगवान् को समर्पित करे ॥६३॥ असंख्य जन्म पर्यन्त स्वामी के धन-वृद्ध्यर्थ रत्नेन्द्र का एक लाख सारभाग श्रीकृष्ण को सप्रयत्न अर्पित करना चाहिए ॥६४॥ व्रत में सम्पत्ति के वृद्ध्यर्थ व्रती को चाहिए कि अनेक भाँति के मजीरा, ताल आदि वाद्य भगवान् श्री हरि को सुनाये ॥६५॥ स्वामी के भोग-वृद्ध्यर्थ घृत-शक्कर मिश्रित मनोहर खीर, पिष्टक (पूआ और बड़ा) भक्तिपूर्वक भगवान् को समर्पित करे ॥६६॥ भगवान् की भक्ति-वृद्धि के निमित्त सुगन्धित पुष्पों की अक्षत एक लाख माला भक्तिपूर्वक भगवान् को अर्पित करे ॥६७॥ हे दुर्गे! भगवान् श्रीकृष्ण की प्रीति-प्राप्त्यर्थ अनेक भाँति के सुस्वादु और मधुर नैवेद्य भगवान् को समर्पित करना चाहिए ॥६८॥ हे सुव्रते! इस व्रत में भगवान् श्रीकृष्ण की प्रीति के लिए तुलसी पत्र समेत अनेक भाँति के पुष्प, भक्तिपूर्वक भगवान् को अर्पित करे ॥६९॥ जन्म-जन्मान्तर में अपनी सस्य-वृद्धि के निमित्त एक सहस्र ब्राह्मणों को व्रती प्रतिदिन भोजन कराये ॥७०॥ हे देवि! इस पूजन में परि-पूरणार्थ नित्य सौ पुष्पाजलि अर्पित करनी चाहिए और भक्ति-वृद्धि के निमित्त सौ बार प्रणाम करना चाहिए ॥७१॥

षण्मासांश्च हविष्यान्नं मासान्पञ्च फलादिकम्। हविः पक्षं जलं पक्षं व्रते भक्षेच्च सुव्रते ॥७२॥
रत्नप्रदीपशतकं वीक्ष्य दद्याद्दिवानिशम्। रात्रौ कुशासनं कृत्वा नित्यं जागरणं व्रते ॥७३॥
ज्ञानवृद्धिर्जागरणे सुबुद्धिर्मूलभोजने। लोभमोहकामक्रोधभयशोकविवादकम् ॥७४॥
स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्। संकल्पोऽध्यवसायश्च [1]क्रियानिर्वृत्तिरित्यपि ॥७५॥
[2]विविधं मैथुनं त्याज्यं व्रतिना व्रतशुद्धये। कलहश्च परित्याज्यो व्रते क्रीडाविवृद्धये ॥७६॥
संपूर्णे च व्रते देवि प्रतिष्ठा तदनन्तरम्। त्रिशतं वै षष्ट्यधिकं रल्लकं वस्त्रसंयुतम् ॥७७॥
सभोज्यं सोपवीतं च सोपहारं ददात्वयम्। त्रिशतं वै षष्ट्यधिकसहस्रं विप्रभोजनम् ॥७८॥
[3]त्रिशतं वै षष्ट्यधिकं सहस्रं तिलहोमकम्। त्रिशतं वै षष्ट्यधिकं सहस्रं स्वर्णमेव च ॥७९॥
देया व्रतसमाप्तौ च दक्षिणा विधिबोधिता। अन्यां समाप्तिदिवसे कथयिष्यामि दक्षिणाम् ॥८०॥
एतद्व्रतफलं देवि दृढा भक्तिर्हरौ भवेत्। हरितुल्यो भवेत्पुत्रो विख्यातो भुवनत्रये ॥८१॥
सौन्दर्यं स्वामिसौभाग्यमैश्वर्यं विपुलं धनम्। सर्ववाञ्छितसिद्धीनां बीजं जन्मनि जन्मनि ॥८२॥
इत्येवं कथितं देवि व्रतं कुरु महेश्वरि। पुत्रस्ते भविता साध्वीत्युक्त्वा स विरराम ह ॥८३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० पुण्यकव्रतविधानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

इस व्रत में व्रती को छह मास तक हविष्यान्न, पाँच मास तक फल आदि, एक पक्ष हवि का भक्षण और फिर एक पक्ष तक केवल जल पी कर रहना चाहिए ॥७२॥ व्रत में रत्नों के सौ दीपक दिन-रात जलाना चाहिए और रात्रि में कुशासन पर समासीन होकर नित्य जागरण करना चाहिए ॥७३॥ जागरण में ज्ञान की वृद्धि होती है और कन्द- मूल भोजन करने से सुबुद्धि होती है। लोभ, मोह, काम क्रोध, भय, शोक और विवाद का त्याग करना चाहिए। हे देवि ! व्रत-शुद्धि के निमित्त इस व्रत में व्रती को (कामविषयक) स्मरण, कीर्तन, केलि (क्रीडा), प्रेक्षण (आँखें गड़ा कर देखना), गुह्य भाषण, संकल्प (उसकी प्राप्ति के लिए दृढ़ इच्छा), अध्यवसाय (प्रयत्न) और क्रिया निर्वृत्ति (संभोग) एवं विविध प्रकार के मैथुन तथा कलह का त्याग करना चाहिए। व्रत के सम्पूर्ण हो जाने पर अनन्तर प्रतिष्ठा करनी चाहिए। तीन सौ साठ कम्बल, वस्त्र, भोजन, यज्ञोपवीत एवं उपहार समेत दान करे। तीन सौ साठ सहस्र ब्राह्मणों को भोजन कराये ॥७४-७८॥ तीन सौ साठ सहस्र तिल की आहुति और तीन सौ साठ सहस्र सुवर्ण व्रत की समाप्ति में दक्षिणा प्रदान करना चाहिए, ऐसा ब्रह्मा ने बताया है। हे देवि ! समाप्ति के दिन दी जाने वाली अन्य दक्षिणा को भी बताऊँगा ॥७९-८०॥इस प्रकार सुसम्पन्न करने से इस व्रत का यह फल होता है कि भगवान् में दृढ़ भक्ति उत्पन्न होती है। भगवान् के समान तीनों लोकों में विख्यात पुत्र होता है तथा सौन्दर्य, स्वामी-सौभाग्य, ऐश्वर्य एवं विपुल धन की प्राप्ति होती है। प्रत्येक जन्म में सभी अभिलषित सिद्धियों की प्राप्ति होती रहती है। हे महेश्वरि ! देवि ! इस प्रकार मैंने तुम्हें व्रत बता दिया, इसे सुसम्पन्न करो। हे साध्वि ! तुम्हारे अवश्य पुत्र होगा। इतना कह कर शिव जी चुप हो गये ॥८१-८३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में पुण्यक-व्रत-विधान नामक चौथा अध्याय समाप्त ॥४॥

---

१ ०यानिष्पत्तिरेव च। २ ख० स्वप्नमैथुनकं. त्या०।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

नारायण उवाच

श्रुत्वा व्रतविधानं च दुर्गा संहृष्टमानसा। पुनः प्रपच्छ कान्तं सा दिव्यां व्रतकथां शुभाम्॥१॥

पार्वत्युवाच

किमद्भुतं व्रतं नाथ विधानं फलमस्य च। अधिकां तत्कथां ब्रूहि व्रतं केन प्रकाशितम्॥२॥

महादेव उवाच

शतरूपा मनोः पत्नी पुत्रदुःखेन दुःखिता। ब्रह्मणः स्थानमागत्य सा ब्रह्माणमुवाच ह॥३॥

शतरूपोवाच

ब्रह्मन्केन प्रकारेण वन्ध्यायाश्च सुतो भवेत्। तन्मे ब्रूहि जगद्धातः सृष्टिकारणकारण॥४॥
तज्जन्म निष्फलं ब्रह्मन्नैश्वर्यं धनमेव च। किंचिन्न शोभते गेहे विना पुत्रेण पुत्रिणाम्॥५॥
तपोदानोद्भवं पुण्यं जन्मान्तरसुखावहम्। सुखदो मोक्षदः प्रीतिदाता पुत्रश्च पुत्रिणाम्॥६॥
पुत्री पुत्रमुखं दृष्ट्वा चाश्वमेधशतोद्भवम्। फलं पुंनामनरकत्राणहेतुं लभेद्ध्रुवम्॥७॥
पुत्रोत्पत्तेरुपायं वै वद मां तापसंयुताम्। तदा भद्रं न चेद्भर्त्रा सह यास्यामि काननम्॥८॥

अध्याय ५

पुण्यक व्रत का माहात्म्य-कथन

नारायण बोले—व्रत का विधान सुन कर दुर्गा जी का मन प्रफुल्लित हो गया, फिर उन्होंने उस दिव्य एवं शुभ व्रत-कथा को अपने कान्त (शिव जी) से पूछा॥१॥

पार्वती बोलीं—हे नाथ! यह कैसा अद्भुत व्रत है। इसका विधान, फल, अधिक कथा और किसने इसे प्रकाशित किया, वह मुझे बताने की कृपा करें॥२॥

महादेव बोले—एक बार मनु की पत्नी शतरूपा ने पुत्र (न होने रूप) दुःख से दुःखी हो ब्रह्मा के स्थान में आकर उनसे कहा॥३॥

शतरूपा बोलीं—हे ब्रह्मन्! आप समस्त संसार के धाता एवं सृष्टि-कारणों के कारण हैं, अतः आप मुझे यह बताने की कृपा करें कि—किस उपाय द्वारा वन्ध्या स्त्री को भी पुत्र उत्पन्न हो सकता है॥४॥ क्योंकि हे ब्रह्मन्! जिस गृहस्थ के घर पुत्र नहीं है उसका जन्म निष्फल है, ऐश्वर्य और धन भी व्यर्थ है और उसके घर की कुछ शोभा भी नहीं होती है॥५॥ तप और दान द्वारा उत्पन्न पुण्य दूसरे जन्म में सुखप्रद होता है, और पुत्र पुत्रवानों को सुख, मोक्ष तथा प्रीति प्रदान करता है॥६॥ पुं नामक नरक से बचाने के कारण पुत्र का मुख देखने पर पुत्रवान् व्यक्ति सौ अश्वमेध यज्ञों का फल निश्चित प्राप्त करता है॥७॥ इसलिए मुझ संतप्त दुःखिया को आप

गृहाण राज्यमैश्वर्यं धनं पृथ्वीं प्रजावहाम्। किमेतेनाऽवयोस्तात विना पुत्रैरपुत्रिणोः ॥९॥
अपुत्रिणो मुखं द्रष्टुं विद्वान्नोत्सहतेऽशिवम्। मुखं दर्शयितुं लज्जां समवाप्नोत्यपुत्रकः ॥१०॥
अथवा गरलं भुक्त्वा प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्। अपुत्रपौत्रमशिवं गृहं स्यात्स्त्रीविहीनकम् ॥११॥
इत्येवमुक्त्वा सा साक्षाद्ब्रह्मणोऽग्रे रुरोद ह। कृपानिधिश्च तां दृष्ट्वा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्से प्रवक्ष्यामि पुत्रोपायं सुखावहम्। सर्वैश्वर्यादिबीजं च सर्ववाञ्छाप्रदं शुभम् ॥१३॥
माघशुक्लत्रयोदश्यां व्रतमेतत्सुपुण्यकम्। कर्तव्यं शुद्धकाले च कृष्णमाराध्य सर्वदम् ॥१४॥
संवत्सरं च कर्तव्यं सर्वविघ्नविनाशनम्। द्रव्याणि वेदैरुक्तानि व्रते देयानि सुव्रते ॥१५॥
व्रतं च काण्वशाखोक्तं सर्ववाञ्छितसिद्धिदम्। कृत्वा पुत्रं लभ शुभे विष्णुतुल्यपराक्रमम् ॥१६॥
ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा सा कृत्वा व्रतमुत्तमम्। प्रियव्रतोत्तानपादौ लेभे पुत्रौ मनोहरौ ॥१७॥
व्रतं कृत्वा देवहूतिर्लेभे सिद्धेश्वरं सुतम्। नारायणांशं कपिलं पुण्यकं[1] सिद्धिदं शुभम् ॥१८॥
अरुन्धतीदं कृत्वा तु लेभे[2] शक्तिसुतं शुभा। शक्तिकान्ता व्रतं कृत्वा सुतं लेभे पराशरम् ॥१९॥

पुत्र-उत्पन्न होने का उपाय बतायें। अन्यथा स्वामी के साथ मैं वन चली जाऊँगी ॥८॥ आप राज्य, ऐश्वर्य, धन एवं प्रजापूर्ण पृथ्वी ले लीजिए। क्योंकि हे तात! जब हम लोग निपूत ही रहेंगे तो यह सब लेकर क्या करेंगे ॥९॥ विद्वान् लोग पुत्रहीन का मुख अमंगल होने के नाते कभी नहीं देखना चाहते और वह अपुत्री भी अपना मुख दिखाने में लज्जा का अनुभव करता है ॥१०॥ अथवा मैं विष भक्षण कर अग्नि में पैठ जाऊँगी। क्योंकि पुत्र-पौत्र एवं स्त्रीहीन गृह अमंगल रूप है ॥११॥ इतना कह कर वह ब्रह्मा के सामने रोने लगीं। अनन्तर कृपानिधान ब्रह्मा ने उसकी ओर देख कर कहना आरम्भ किया ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्से! मैं तुम्हें पुत्र उत्पन्न होने का सुखप्रद उपाय बता रहा हूँ, जो समस्त ऐश्वर्य प्राप्ति का कारण, समस्त मनोरथ सिद्ध करनेवाला एवं शुभ है ॥१३॥ माघ-शुक्ल-त्रयोदशी में सुपुण्यक नामक व्रत होता है। शुद्ध काल में सर्वदाता भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना पूर्वक वह व्रत सुसम्पन्न करना चाहिए ॥१४॥ हे सुव्रते! समस्त विघ्नों का नाश करने वाला वह व्रत पूर्ण वर्ष भर करे और वेद में कही वस्तुएँ उस व्रत में दान करे ॥१५॥ हे शुभे! इस प्रकार काण्व शाखा के अनुसार समस्त मनोरथ को सिद्ध करने वाले उस व्रत को सुसम्पन्न कर भगवान् विष्णु के समान पराक्रमी पुत्र प्राप्त करो ॥१६॥ ब्रह्मा की बातें सुनकर उसने उस व्रत को सुसम्पन्न किया, जिससे उसे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो मनोहर पुत्र प्राप्त हुए ॥१७॥ देवहूति ने सिद्धि-दायक तथा पवित्र पुण्यक व्रत करके सिद्धों के ईश्वर, तथा नारायण के अंश से संभूत कपिल नामक पुत्र प्राप्त किया, ॥१८॥ अरुन्धती ने इसे सुसम्पन्न कर शक्ति नामक पुत्र प्राप्त किया और शक्ति की कान्ता ने इसे सम्पन्न कर पराशर नामक पुत्र लाभ किया ॥१९॥ अदिति ने इस व्रत के द्वारा वामनावतार पुत्र और देवों की

---

१ ख. पुण्यदं शु० । २ क. सिद्धेश्वरं सुतम्।

अदितिश्च व्रतं कृत्वा लेभे वामनकं सुतम्। शची जयन्तं पुत्रं च लेभे कृत्वेदमीश्वरी ॥२०॥
उत्तानपादपत्नीदं कृत्वा लेभे ध्रुवं सुतम्। कुबेरजाया कृत्वेदं लेभे च नलकूबरम् ॥२१॥
सूर्यपत्नी मनुं लेभे कृत्वेदं व्रतमुत्तमम्। अत्रिपत्नी सुतं चन्द्रं लेभे कृत्वेदमुत्तमम् ॥२२॥
लेभे चाङ्गिरसः पत्नी कृत्वेदं व्रतमुत्तमम्। बृहस्पतिं सुरगुरुं पुत्रमस्य प्रभावतः ॥२३॥
भृगोर्भार्या व्रतं कृत्वा लेभे दैत्यगुरुं सुतम्। शुक्रं नारायणांशं च सर्वतेजस्विनां वरम् ॥२४॥
इत्येवं कथितं देवि व्रतानां व्रतमुत्तमम्। त्वमेवं कुरु कल्याणि हिमालयसुते शुभे ॥२५॥
साध्यं राजेन्द्रपत्नीनां देवीनां च सुखावहम्। व्रतमेतन्महासाध्वि साध्वीनां प्राणतः प्रियम् ॥२६॥
व्रतस्यास्य प्रभावेण स्वयं गोपाङ्गनेश्वरः। ईश्वरः सर्वभूतानां तव पुत्रो भुविष्यति ॥२७॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम च नारद। व्रतं चकार सा देवी प्रहृष्टा शंकराज्ञया ॥२८॥
इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि। सुखदं मोक्षदं सारं गणेशजनिकारणम् ॥२९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० पुण्यकव्रतकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

ईश्वरी इन्द्राणी ने इसके द्वारा जयन्त नामक पुत्र को प्राप्त किया ॥२०॥ उत्तानपाद की पत्नी ने इस व्रत को समाप्त कर ध्रुव नामक पुत्र लाभ किया, कुबेर की पत्नी ने इस व्रत को करके नल-कूबर नामक दो पुत्र लाभ किये और सूर्य की पत्नी संज्ञा ने इस व्रत को सुसम्पन्न कर मनु पुत्र प्राप्त किया एवं अत्रि की पत्नी (अनसूया) ने चन्द्रमा नामक उत्तम पुत्र प्राप्त किया ॥२१-२२॥ अंगिरा की पत्नी ने इस उत्तम व्रत को सम्पन्न कर बृहस्पति नामक पुत्र प्राप्त किया, जो देवों के गुरु हैं ॥२३॥ भृगु की पत्नी ने इसी व्रत के प्रभाव से शुक्र नामक पुत्र प्राप्त किया, जो दैत्यों के गुरु, नारायण के अंश एवं समस्त तेजस्वियों में श्रेष्ठ हैं ॥२४॥ हे देवि! समस्त व्रतों में परमोत्तम व्रत मैंने इस प्रकार तुम्हें बता दिया। अतः हे कल्याणि! हे हिमालय-सुते! शुभे! तुम भी इस प्रकार सम्पन्न करो ॥२५॥ हे महासाध्वि! महारानियों के लिए यह व्रत साध्य है, देवियों के लिए सुखप्रद तथा पतिव्रताओं को प्राणों से भी अधिक प्रिय है ॥२६॥ इस व्रत के प्रभाव वश गोपांगनाओं के अधीश्वर भगवान् कृष्ण, जो समस्त भूतों के अधीश्वर हैं, स्वयं तुम्हारे पुत्र होंगे ॥२७॥ हे नारद! इतना कहकर शिवजी चुप हो गये। अनन्तर देवी ने शंकर जी की आज्ञा शिरोधार्य कर अत्यन्त प्रसन्नता से इस व्रत को सुसम्पन्न किया ॥२८॥ इस भाँति मैंने सब कुछ सुना दिया जो सुख, मोक्षप्रद एवं गणेश जन्म का कारण है, और अब क्या सुनना चाहते हो ॥२९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में पुण्यक व्रत कथन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

शौनक उवाच

नारायणवचः श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः। किं पप्रच्छ पुनः साधो तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥१॥

सूत उवाच

नारायणवचः श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः। व्रतारम्भविधानं च संप्रष्टुमुपचक्रमे ॥२॥

नारद उवाच

कृतं केन प्रकारेण व्रतमेतच्छुभावहम्। तन्मे ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ पार्वत्या भर्तुराज्ञया ॥३॥
ललाभ जन्म [1]गोपीशः कृते सुव्रतया व्रते। ब्रह्मन्केन प्रकारेण तन्नः शंसितुमर्हसि ॥४॥

नारायण उवाच

कथयित्वा कथां दिव्यां विधानं च व्रतस्य च। स्वयं विधाता तपसां जगाम तपसे शिवः ॥५॥
हरेराराधनव्यग्रो मूर्तिभेदधरो हरिः। हरिभावनशीलश्च हरिध्यानपरायणः ॥६॥
परमानन्दपूर्णश्च ज्ञानानन्दः सनातनः। दिवानिशं न जानाति हरिमन्त्रं बहिः स्मरन् ॥७॥

अध्याय ६

पुण्यकव्रत के लिए आज्ञा-ग्रहण

शौनक बोले—हे साधो! हे तपोधन! नारायण की बातें सुनकर प्रसन्न चित्त नारद ने पुनः क्या प्रश्न किया, वह मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

सूत बोले—नारायण की बातें सुनकर नारद जी प्रसन्नचित्त होकर व्रत का आरम्भ-विधान पूछने लगे ॥२॥

नारद बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! पति की आज्ञा शिरोधार्य कर पार्वती ने इस शुभप्रद व्रत को किस प्रकार सुसम्पन्न किया, वह मुझे बताने की कृपा करें ॥३॥ हे ब्रह्मन्! उत्तम व्रत को सम्पन्न करने वाली पार्वती जी द्वारा इस व्रत के पूर्ण होने पर भूतेश भगवान् श्रीकृष्ण ने उनके यहाँ किस प्रकार जन्म ग्रहण किया, यह कृपया मुझे बतायें ॥४॥

नारायण बोले—तप के विधाता शिव ने स्वयं इस व्रत की दिव्य कथा और विधान कहकर तप के लिए प्रस्थान किया ॥५॥ क्योंकि भगवान् की आराधना के लिए वे सदैव व्यग्र रहा करते हैं, भगवान् का रूपान्तर धारण करने के नाते वे हरि हैं, हरि की सतत भावना बनाये रखना उनका शील (स्वभाव) है। इसीलिए भगवान् के ध्यान में तन्मय रहते हैं ॥६॥ वे परमानन्द से पूर्ण, ज्ञानानन्द और सनातन हैं, भगवान् के मन्त्र-जप में संलग्न

---

१ क. भूतेशः।

प्रहृष्टमनसा देवी पार्वती भर्तुराज्ञया। किंकरान्प्रेरयामास विप्रांश्च व्रतहेतवे॥८॥
आनीय सर्वद्रव्याणि व्रते योग्यानि यानि च। व्रतं कर्तुं समारेभे शुभदा सा शुभे क्षणे॥९॥
सनत्कुमारो भगवानाजगाम विधेः सुतः। मूर्तिमांस्तेजसां राशिः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा॥१०॥
ब्रह्मा जगाम हृष्टश्च ब्रह्मलोकात्सभार्यकः। अतित्रस्तो हि भगवानाजगाम सुरेश्वरः॥११॥
विष्णुः क्षीरोदशायी च सलक्ष्मीकश्चतुर्भुजः। भगवाञ्जगतां पाता शास्ता भर्ता सपार्षदः॥१२॥
वनमालाधरः श्यामो भूषितो रत्नभूषणैः। तथा संभृतसंभारो रत्नयानेन नारद॥१३॥
सनकश्च सनन्दश्च कपिलश्च सनातनः। आसुरिश्च क्रतुर्हंसो वोढुः पञ्चशिखोऽरुणिः॥१४॥
यतिश्च सुमतिश्चैव वसिष्ठश्च सहानुगः। पुलहश्च पुलस्त्यश्चाप्यत्रिश्च भृगुरङ्गिराः॥१५॥
अगस्त्यश्च प्रचेताश्च दुर्वासाश्च्यवनस्तथा। मरीचिः कश्यपः कण्वो जरत्कारुश्च गौतमः॥१६॥
बृहस्पतिरुतथ्यश्च संवर्तः सौभरिस्तथा। जाबालिर्जमदग्निश्च जैगीषव्यश्च देवलः॥१७॥
[1]गोकामुखो वक्रथः पारिभद्रः पराशरः। विश्वामित्रो वामदेव ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः॥१८॥
मार्कण्डेयो मृकण्डुश्च [2]पुष्करो लोमशस्तथा। कौत्सो वत्सश्च दक्षश्च [3]बालाग्निरघमर्षणः॥१९॥
कात्यायनः कणादश्च पाणिनिः शाकटायनः। शङ्कुरापिशलिश्चैव शाकल्यः शङ्ख एव च॥२०॥
एते चान्ये च बहवः सशिष्या मुनयो मुने। आवां च धर्मपुत्रौ च नरनारायणौ समौ॥२१॥

रहने के कारण उन्हें बाहर दिन-रात्रि का ज्ञान कुछ भी नहीं रहता है॥७॥ प्रसन्नचित्त पार्वती ने पति की आज्ञा से इस व्रत के निमित्त सेवकों और ब्राह्मणों को प्रेरित किया॥८॥ शुभदायिनी पार्वती ने व्रत की समस्त योग्य वस्तुओं के आ जाने पर शुभ मुहूर्त में इस व्रत को आरम्भ किया॥९॥ ब्रह्मा के पुत्र भगवान् सनत्कुमार का वहाँ आगमन हुआ, जो प्रज्वलित ब्रह्मतेज से मूर्तिमान् तेज की राशि मालूम हो रहे थे॥१०॥ ब्रह्मा भी प्रसन्न होकर ब्रह्मलोक से पत्नी समेत वहाँ आये और अति त्रस्त देवेश्वर भगवान् भी आये॥११॥ तथा क्षीरसागर में शयन करनेवाले चतुर्भुजधारी भगवान् विष्णु भी, जो जगत् के पालक एवं शासनकर्ता हैं, लक्ष्मी तथा पार्षदों समेत रत्नयान द्वारा वहाँ पधारे। वे वनमाला धारण किये, श्यामवर्ण, रत्नभूषणों से भूषित एवं समस्त-सामग्री-सम्पन्न थे॥१२-१३॥ हे नारद! अनन्तर सनक, सनन्द, कपिल, सनातन, आसुरि, क्रतु, हंस, वोढु, पञ्चशिख, अरुणि, यति, सुमति, शिष्य समेत वशिष्ठ, पुलह, पुलस्त्य, अत्रि, भृगु, अंगिरा, अगस्त्य, प्रचेता, दुर्वासा, च्यवन, मरीचि, कश्यप, कण्व, जरत्कारु, गौतम, बृहस्पति, उतथ्य, संवर्त, सौभरि, जाबालि, जमदग्नि, जैगीषव्य, देवल, गोकामुख, वक्रथ, पारिभद्र, पराशर, विश्वामित्र, वामदेव, ऋष्यशृंग, विभाण्डक, मार्कण्डेय, मृकुण्ड, पुष्कर, लोमश, कौत्स, वत्स, दक्ष, बालाग्नि, अघमर्षण, कात्यायन, कणाद, पाणिनि, शाकटायन, शंकु, आपिशलि, साकल्य और शंख आये॥१४-२०॥ हे मुने! इनके अतिरिक्त और भी अनेक मुनिगण अपने-अपने शिष्यों समेत वहाँ आये। धर्मपुत्र और हम दोनों—नरनारायण भी गये॥२१॥ तथा दिक्पाल, देवगण, यक्ष, गन्धर्व,

---

१ क. °मुखश्चक्रकरः पा° । २ क. प्रस्कण्वो । ३ क. काला० ।

दिक्पालाश्च तथा देवा यक्षगन्धर्वकिन्नराः। आजग्मुः पर्वताः सर्वे सगणाः पार्वतीव्रते ॥२२॥
हिमालयः शैलराजः सापत्यश्च सभार्यकः। सगणः सानुगश्चैव रत्नभूषणभूषितः ॥२३॥
तथा संभृतसंभारो नानाद्रव्यसमन्वितः। मणिमाणिक्यरत्नानि व्रते योग्यानि यानि च ॥२४॥
नानाप्रकारवस्तूनि जगत्यां दुर्लभानि च। लक्षं च गजरत्नानामश्वरत्नं त्रिलक्षकम् ॥२५॥
दशलक्षं गवां रत्नं शतलक्षं सुवर्णकम्। रुचकानां हीरकाणां स्पर्शानां च तथैव च ॥२६॥
मुक्तानां च चतुर्लक्षं कौस्तुभानां सहस्रकम्। सुस्वादुनानाद्रव्याणां लक्षभाराणि कौतुकी ॥
अनन्तरत्नप्रभव आजगाम सुतावते ॥२७॥
ब्राह्मणा मनवः सिद्धा नागा विद्याधरास्तथा। संन्यासिनो भिक्षुकाश्च बन्दिनः पार्वतीव्रते ॥२८॥
विद्याधरी नर्तकी च नर्तकाप्सरसां गणाः। नानाविधा वाद्यभाण्डा आजग्मुः शिवमन्दिरम् ॥२९॥
कैलासराजमार्गं च चन्दनेन सुसंस्कृतम्। आम्रपल्लवसूत्राढ्यं कदलीस्तम्भशोभितम् ॥३०॥
दूर्वाधान्यफलैः पर्णलाजपुष्पैर्विभूषितम्। निर्मितं पद्मरागेण ददृशुस्ते गणा मुदा ॥३१॥
उच्चैः सिंहासनेष्वेते पूजिताः शंकरेण च। कैलासवासिनः सर्वे परमानन्दसंयुताः ॥३२॥
दानाध्यक्षः शुनाशीरः कुबेरः कोशरक्षकः। आदेष्टा च स्वयं सूर्यः परिवेष्टा जलाधिपः ॥३३॥
दध्नां नद्यः सहस्राणि दुग्धानां च तथैव च। सहस्राणि घृतानां च गुडानां च शतानि च ॥३४॥
माध्वीकानां सहस्राणि तैलानां च शतानि च। लक्षाणि चैव तक्राणां बभूवुः पार्वतीव्रते ॥३५॥
पीयूषाणां च कुम्भानि शतलक्षाणि नारद। मिष्टान्नानां शर्कराणां बभूवुर्लक्षराशयः।

किन्नर और गण समेत समस्त पर्वत भी पार्वती के उस व्रत में आये ॥२२॥ पर्वतराज हिमालय ने स्त्री-बच्चे, गणों और सेवकों समेत रत्नों के भूषणों से भूषित होकर वहाँ आगमन किया, जो विपुल सामग्री—अनेक भाँति के द्रव्य, मणि, माणिक्य, रत्न, व्रत के योग्य अनेक भाँति की जगत्-दुर्लभ वस्तुएँ, एक लाख गजेन्द्र, तीन लाख उत्तम घोड़े, दश लाख गौएँ, सौ लाख रत्न, उतना ही सुवर्ण, रुचक (सोने के सिक्के), हीरा, स्पर्श मणि, चार लाख मोती, सहस्र कौस्तुभमणि और सुस्वादु अनेक भाँति के द्रव्यों का एक लाख भार लाये थे। इस प्रकार अपनी पुत्रीके व्रत में अनन्त रत्नों के उद्गम स्थान हिमालय कुतूहल से पधारे थे ॥२३-२७॥ पार्वती के उस व्रत में ब्राह्मण-वृन्द, मनुगण, सिद्ध, नाग, विद्याधर, संन्यासी, भिक्षुक एवं बन्दीगण आये ॥२८॥ नर्तकी विद्याधरी, नर्तक गण, अप्सराओं के गण और अनेक भाँति के बाजे बजाने वाले शिव के घर आये ॥२९॥ उस समय कैलास का राजमार्ग चन्दन से सुसंस्कृत, सूत्र में बंधे आम के पल्लव और कदली स्तम्भ से सुशोभित तथा दूर्वा, धान्यफलों, पत्तों, लावे तथा पुष्पों से विभूषित था, जो पद्मरागमणि से बनाया गया था। अभ्यागत वर्ग उसे बड़ी प्रसन्नता से देख रहे थे ॥३०-३१॥ शंकर जी ने उचित पूजन कर सबको ऊँचे सिंहासनों पर बैठाया, उस समय समस्त कैलासवासी परमानन्द-मग्न थे ॥३२॥ उस व्रत में इन्द्र दानाध्यक्ष, कुबेर कोषाध्यक्ष, सूर्य आदेश देने वाले, वरुण परोसने वाले, दही की सहस्र नदियाँ, दुग्ध की सहस्र नदियाँ, घृत की सहस्र नदियाँ, गुड की सौ, आसवों की सहस्र, तेलों की सौ और मट्ठे की एक लाख नदियाँ थीं ॥३३-३५॥ हे नारद! सौ लाख अमृत के कलश तथा मिष्टान्न और शक्करों की एक लाख

यवगोधूमचूर्णानां घृताक्तानां च नारद ॥३६॥
स्वस्तिकानां च पूपानां बभूवुर्लक्षराशयः। गुडसंस्कृतलाजानां बभूवुः कोटिराशयः॥३७॥
शालीनां पृथुकानां च राशीनां दशकोटयः। वरतण्डुलराशीनां मुने संख्या न विद्यते॥३८॥
स्वर्णरौप्यप्रवालानां मणीनां च महामुने। बभूवुः पर्वतास्तत्र कैलासे पार्वतीव्रते॥३९॥
पायसं पिष्टकं चैव शाल्यन्नं सुमनोहरम्। चकार लक्ष्मीः पाकं च व्यञ्जनं घृतसंस्कृतम्॥४०॥
बुभुजे देवर्षिगणैः शिवो नारायणेन च। बभूवुर्लक्षविप्राश्च परिवेषणकारकाः॥४१॥
ताम्बूलं च ददौ तेभ्यः कर्पूरादिसुवासितम्। रत्नसिंहासनस्थेभ्यो विप्रलक्षाः सुदक्षकाः॥४२॥
रत्नसिंहासनस्थं च विष्णुं क्षीरोदशायिनम्। सेव्यमानं पार्षदैश्च सस्मितैः श्वेतचामरैः॥४३॥
ऋषिभिः स्तूयमानं च सिद्धैर्देवगणैस्तथा। विद्याधरीणां नृत्यानि पश्यन्तं सस्मितं मुदा॥४४॥
गन्धर्वाणां च संगीतं श्रुतवन्तं मनोहरम्। पप्रच्छ शंकरो ब्रह्मन्ब्रह्मेशं प्रीतिपूर्वकम्॥४५॥
ब्रह्मणा प्रेरितो युक्तं व्रतं कर्तव्यमीप्सितम्। देवर्षिगणपूर्णायां सभायां संपुटाञ्जलिः॥४६॥

महादेव उवाच

मदीयं वचनं नाथ श्रीनिवास शृणु प्रभो। तपःस्वरूप तपसां कर्मणां च फलप्रद॥४७॥
व्रतानां जपयज्ञानां पूजानां सर्वपूजित। सर्वेषां बीजरूपेण वाञ्छाकल्पतरो हरे॥४८॥

राशियाँ थीं। हे नारद! जवा और गेहूँ के आटे की भी उतनी ही राशियाँ थीं। घी में तर पूओं और मलपूओं की एक लाख राशि, गुड़ पाक लावे की करोड़ राशियाँ थीं॥३६-३७॥ चिउड़े और जड़हन चावलों की दश करोड़ राशियाँ थीं। हे मुने? उत्तम चावलों की राशियों की तो संख्या ही नहीं थी॥३८॥ हे महामुने! पार्वती के व्रत में कैलास पर सोने, चाँदी, प्रवाल (मूंगे) और मणियों के पर्वत ही थे॥३९॥ खीर, पीठी, मनोहर चावल के भात और घी में बघारी गई तरकारियों का पाक स्वयं लक्ष्मी ने किया॥४०॥ भगवान् नारायण और देवर्षिगणों समेत शिव भोजन कर रहे थे। एक लाख ब्राह्मण उसमें परोसने का कार्य कर रहे थे॥४१॥ एक लाख अति चतुर ब्राह्मणगण रत्नसिंहासनों पर सुखासीन अतिथियों को कपूर आदि से सुवासित ताम्बूल प्रदान से सम्मानित कर रहे थे॥४२॥ हे ब्रह्मन्! क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णु रत्न-सिंहासन पर सुशोभित हो रहे थे। मन्द मुसुकान करते हुए पार्षदगण श्वेत चामर द्वारा उनकी सेवा कर रहे थे। ऋषिगण, सिद्ध वर्ग और देवगण स्तुति कर रहे थे। प्रसन्नचित्त भगवान् मन्द-मन्द मुसुकाते हुए विद्याधरियों का नृत्य और गन्धर्वों के मनोहर संगीत सुन रहे थे। उसी समय शिव ने, जो ब्रह्मा से प्रेरित, अभीष्ट व्रत को पूर्ण कराने में तत्पर और देवों ऋषियों आदि गणों से भरी सभा में हाथ जोड़े खड़े थे, ब्रह्मेश विष्णु से सप्रेम पूछा,॥४३-४६॥

महादेव बोले—हे नाथ! हे श्रीनिवास! हे प्रभो! तपःस्वरूप, तथा तप और कर्मों के फल प्रदान करने वाले! मेरी प्रार्थना सुनने की कृपा करें॥४७॥ व्रतों, जप-यज्ञों और पूजनों में सबसे पूजित! हे हरे! सभी के बीजरूप और अभीष्ट सिद्धि के कल्पतरु! हे ब्रह्मन्! पार्वती जी को पुत्र की

सुपुण्यकव्रतं कर्तुं ब्रह्मन्निच्छति पार्वती। पुत्रार्थिनी सा शोकार्ता हृदयेन विदूयता ॥४९॥
रतिभङ्गे कृते देवैर्व्यर्थवीर्यशुचार्दिता। प्रबोधिता मया साध्वी विविधैर्वचनामृतैः ॥५०॥
सत्पुत्रं स्वामिसौभाग्यं सुव्रता याचते व्रते। ताभ्यां विना न संतुष्टा स्वप्राणांस्त्यक्तुमिच्छति ॥५१॥
पुरा त्यक्त्वा स्वदेहं च पितृयज्ञे च मानिनी। मन्निन्दया हिमवति पुनर्जन्म ललाभ सा ॥५२॥
सर्वं जानासि वृत्तान्तं सर्वज्ञं त्वां वदामि किम्। काऽऽज्ञा तां वद तत्त्वज्ञ परिणामशुभप्रदाम् ॥५३॥
दुर्निवार्यश्च [1]सर्वेश स्त्रीस्वभावश्च चापलः। दुस्त्याज्यं योगिभिः सिद्धैरस्माभिश्च तपस्विभिः ॥५४॥
जितेन्द्रियैर्जितक्रोधैः स्त्रीरूपं मोहकारणम्। सर्वमायाकरण्डं च कामवर्धनकारणम् ॥५५॥
ब्रह्मास्त्रं कामदेवस्य दुर्भेद्यं जयकारणम्। सुनिर्मितं च विधिना सर्वाद्यं विधिपूर्वकम् ॥५६॥
मोक्षद्वारकपाटं च हरिभक्तिनिरोधनम्। संसारबन्धनस्तम्भरज्जुरूपमकृन्तनम् ॥५७॥
वैराग्यनाशबीजं च शश्वद्रागविवर्धनम्। पत्तनं साहसानां च दोषाणामालयं सदा ॥५८॥
अप्रत्ययानां क्षेत्रं च स्वयं कपटमूर्तिमत्। अहंकाराश्रयं शश्वद्विषकुम्भं सुधामुखम् ॥५९॥
सर्वैरसाध्यमानं च दुराराध्यं च सर्वदा। स्वकार्यसाध्याचाराढ्यं कलहाङ्कुरकारणम् ॥६०॥
सर्वं निवेदितं नाथ कर्तव्यं वक्तुमर्हसि। कार्यं सर्वं परामर्शे परिणामसुखावहम् ॥६१॥

कामना है, इसी कारण हार्दिक दुःख से वे शोकग्रस्त होकर पुण्यक व्रत करना चाहती हैं ॥४८-४९॥ देवों द्वारा रति भंग होने पर वीर्य व्यर्थ हो गया था, जिससे वे अधिक चिन्तित हुईं। अनन्तर मैंने उस पतिव्रता को अनेक भाँति के अमृत-मय वचनों द्वारा समझा कर शान्त किया ॥५०॥ इस व्रत में वह सुव्रता स्वामिसौभाग्य रूप सत्पुत्र की याचना कर रही है, इन दोनों के बिना वह सन्तुष्ट नहीं हो सकती, वह अपना प्राण त्याग करने पर तैयार है ॥५१॥ पूर्व काल में उस मानिनी ने मेरी निन्दा के कारण अपने पिता के यज्ञ में अपनी देह त्यागकर हिमालय के यहाँ पुनः जन्म धारण किया था ॥५२॥ हे तत्त्वज्ञ ! आप सर्वज्ञ हैं। अतः समस्त वृत्तान्त जानते हैं, मैं आपसे क्या कहूँ। क्या आज्ञा है ? परिणाम में शुभप्रद उस आज्ञा को कहने की कृपा कीजिये ॥५३॥ क्योंकि हे सर्वेश ! स्त्रियों का स्वभाव दुर्निवार और चपल होता है। और स्त्रियों का रूप हम योगियों, सिद्धों, तपस्वियों, जितेन्द्रियों और क्रोधजयी लोगों के लिए भी दुस्त्यज है। स्त्री-रूप मोह का कारण, समस्त माया का करण्ड (सन्दूक), और काम-वृद्धि का कारण है ॥५४-५५॥ ब्रह्मा ने सर्वप्रथम कामदेव के विजयार्थ इस दुर्भेद्य ब्रह्मास्त्र का विधिपूर्वक निर्माण किया ॥५६॥ वह मोक्ष-द्वार का कपाट (किवाड़), भगवान् की भक्ति का निरोधक, संसारबन्धन के स्तम्भ की अकाट्य रस्सी रूप, वैराग्य के नाश का कारण, निरन्तर राग-(मोह) वर्द्धक, साहसों का नगर, दोषों का घर, अविश्वास का क्षेत्र, स्वयं मूर्तिमान् कपट, अहंकार का आश्रय, निरन्तर अमृतमुख विष का कलश, सभी लोगों से असाध्य, सदा दुराराध्य, अपने कार्य साधने में निपुण एवं कलह रूप अंकुर का बीज है ॥५७-६०॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने सब कुछ कह दिया। अब आप मेरा कर्तव्य कहने की कृपा करें, जो परामर्श में करणीय और परिणाम में सुखप्रद हो ॥६१॥

---

१ क० वेषां स्त्री०।

नारायण उवाच

इत्येवमुक्त्वा भगवान्निरीक्ष्य ब्रह्मणो मुखम्। विरराम सभामध्ये स्तुत्वा च कमलापतिम् ॥६२॥
शंकरस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः। हितं[1] च नीतिवचनं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥६३॥

विष्णुरुवाच

सुपुण्यकव्रतं सारं सतीसंतानहेतवे। स्वामिसौभाग्यबीजं च पत्नी ते कर्तुमिच्छति ॥६४॥
सर्वासाध्यं दुराराध्यं सर्वकामफलप्रदम्। सुखदं सुखसारं च मोक्षदं पार्वतीश्वर ॥६५॥
सर्वेश्वरो व्रतपरो व्रताराध्यो गुणात्परः। गोलोकनाथो भगवान्पूर्णब्रह्म सनातनः ॥६६॥
आत्मा साक्षिस्वरूपश्च ज्योतीरूपः सनातनः। निराश्रयश्च निर्लिप्तो निरुपाधिर्निरामयः ॥६७॥
भक्तप्राणश्च भक्तेशो भक्तानुग्रहकारकः। दुराराध्यो हि योऽन्येषां भक्तानामतिसाधकः ॥६८॥
भक्त्यधीनो हि भगवान्सर्वसिद्धो हि निष्कलः। ते यस्य च कलाः पुंसो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥६९॥
महान्विराडंशदंशश्च निर्लिप्तः प्रकृतेः परः। [2]अव्ययो निग्रहश्चोग्रो भक्तानुग्रहविग्रहः ॥७०॥
उग्रग्रहो ग्रहाणां च ग्रहनिग्रहकारकः। त्रिकोटिजन्ममध्ये[3] च न साध्यो भवता विना ॥७१॥
लब्ध्वा हि भारते जन्म हरिभक्तिं लभेन्नरः। सेवनं क्षुद्रदेवानां कृत्वा सप्तसु जन्मसु ॥
सूर्यमन्त्रमवाप्नोति केवलं स तदाशिषा ॥७२॥

नारायण बोले—सभा मध्य में भगवान् शंकर ने इतना कह कर ब्रह्मा के मुख की ओर देखा और कमलापति भगवान् की स्तुति करके मौन धारण कर लिया। शंकर जी की बातें सुनकर भगवान् जगदीश्वर ने हंसकर कहना आरम्भ किया, जो हितकर और नीति-सम्मत था ॥६२-६३॥

विष्णु बोले—तुम्हारी पत्नी सती संतान की कामना से सुपुण्यक नामक व्रत करना चाहती है, जो सार रूप और स्वामी के सौभाग्य का बीज रूप है ॥६४॥ हे पार्वतीश्वर! वह व्रत सब के लिए असाध्य, दुःख से आराधना करने योग्य, समस्त कामनाओं के फलों का प्रदाता, सुखप्रद, सुख का सार रूप और मोक्षप्रद है ॥६५॥ भगवान् कृष्ण सबके ईश्वर, व्रतपरायण, व्रत के द्वारा आराधनीय, गुणसे परे, गोलोकनाथ, पूर्ण ब्रह्म, सनातन, आत्मा, साक्षिस्वरूप, ज्योतिरूप, सनातन, निराश्रय, निर्लिप्त, उपाधि रहित, निरामय, भक्तों के प्राण, भक्तों के अधीश्वर और भक्तों पर अनुग्रह करने वाले हैं। जो अन्य के लिए दुराराध्य हैं, वह भक्तों के लिए अति साध्य हैं ॥६६-६८॥ भगवान् भक्ति के अधीन रहते हैं, वे सर्वसिद्ध एवं निष्कल हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर जिस पुरुष की कला रूप हैं, महाविराट् जिस का अंश है, वह निर्लिप्त, प्रकृति से परे, अव्यय (एक समान रहने वाला), निग्रह, उग्र, भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीरधारी, ग्रहों में उग्र ग्रह और ग्रहों का निग्रह करनेवाला है वह आपके बिना तीन करोड़ जन्मों में भी सिद्ध होने वाला नहीं है ॥६९-७१॥ भारत देश में जन्म धारण करने से मनुष्य भगवान् की भक्ति प्राप्त करता है। सात जन्मों तक छोटे-छोटे देवों की सेवा करने से उनके आशीर्वाद द्वारा वह केवल सूर्य का मन्त्र प्राप्त करता है ॥७२॥ भारत में तीन जन्मों तक सूर्य मन्त्र की आराधना करने पर मनुष्य

---

१ ख. तं मितं च क०।२ क. °व्यग्रो नि°। ३ क. °न्मसाध्यश्च न साध्यो भारतं वि०।

सूर्यमन्त्रं समाराध्य त्रिषु जन्मसु भारते। प्राप्नोति शैवं मन्त्रं च सर्वदं मानवो मुदा ।।७३।। संसेव्य परया भक्त्या त्वामेवं सप्तजन्मसु। प्राप्नोति मायामन्त्रं च त्वत्पादाब्जप्रसादतः ।।७४।। शतजन्मसु चाऽऽराध्य मायां नारायणीं पराम्। नारायणकलां सेव्यां समवाप्नोति मानवः ।।७५।। कलां निषेव्य वर्षेऽत्र पुण्यक्षेत्रे सुदुर्लभे। कृष्णभक्तिमवाप्नोति भक्तसंसर्गहेतुकीम् ।।७६।। संप्राप्य भक्तिं निष्पक्वां भ्रामंभ्रामं च भारते। प्राप्नोति परिपक्वां च भक्तिं भक्तनिषेवया ।।७७।। तदा भक्तप्रसादेन देवानामाशिषा शिव। श्रीकृष्णमन्त्रं प्राप्नोति निर्वाणफलदं परम् ।।७८।। कृष्णव्रतं कृष्णमन्त्रं सर्वकामफलप्रदम्। कृष्णतुल्यो भवेद्भक्तश्चिरं कृष्णनिषेवया ।।७९।। महति प्रलये पातः सर्वेषां वै सुनिश्चितम्। न पातः कृष्णभक्तानां साधूनामविनाशिनाम् ।।८०।। अविनाशिनि गोलोके मोदन्ते कृष्णकिंकराः। हसन्ति ते सुनिश्चिन्ता देवान्ब्रह्मादिकाञ्छिव ।।८१।। त्वं संहर्ता च सर्वेषां न भक्तानां महेश्वर। माया मोहयते सर्वान्भक्तान्न कृपया मम ।।८२।। माया नारायणी माता सर्वेषां कृष्णभक्तिदा। न कृष्णभक्तिं प्राप्नोति विना मायानिषेवणम् ।।८३।। सा च नारायणी माया मूलप्रकृतिरीश्वरी। कृष्णप्रिया कृष्णभक्ता कृष्णतुल्याऽविनाशिनी ।।८४।। सा च तेजः स्वरूपा च स्वेच्छाविग्रहधारिणी। आविर्भूता च देवानां तेजसाऽसुरनिग्रहे ।।८५।।

भगवान् शिव का सर्वप्रद मंत्र सहर्ष प्राप्त करता है ।।७३।। सात जन्मों तक परा भक्ति द्वारा तुम्हारी सेवा करने पर उसे तुम्हारे चरण-कमल की कृपा से माया-मन्त्र प्राप्त होता है। सौ जन्मों तक परा नारायणी माया की आराधना करने पर मानव सेवनीया नारायण-कला प्राप्त करता है ।।७४-७५।। इस अति दुर्लभ एवं पुण्य क्षेत्र भारतवर्ष में कला की सेवा करने पर उसे भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति प्राप्त होती है, जो भक्तों के संसर्ग से ही उत्पन्न होती है ।।७६।। अपरिपक्व भक्ति प्राप्त कर भारत में घूम-घूम कर भक्त भक्तों की सेवा द्वारा परिपक्व भक्ति प्राप्त करता है ।।७७।। हे शिव ! उस समय भक्त की कृपा और देवों के आशीर्वाद से उसे भगवान् श्रीकृष्ण का निर्वाण फल प्रदान करने वाला मन्त्र प्राप्त होता है ।।७८।। कृष्ण का व्रत और कृष्ण का मंत्र सकलकामनादायक है। चिरकाल तक श्रीकृष्ण की सेवा कर के भक्त भगवान् कृष्ण के तुल्य हो जाता है ।।७९।। महा-प्रलय में सभी लोगों का निपात होना निश्चित रहता है किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त साधुओं का पात नहीं होता है, वे अविनाशी होते हैं ।।८०।। हे शिव ! उस अनश्वर गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण के सेवक (पार्षद) वर्ग आनन्द विभोर रहते हैं और सुनिश्चिन्त रहने के कारण वे ब्रह्मा आदि देवों का उपहास करते हैं ।।८१।। हे महेश्वर ! तुम सब का संहार करते हो किन्तु भक्तों का कभी नहीं करते। माया सभी को मोहित करती है किन्तु मेरी कृपा से भक्तों को मोहित नहीं करती है ।।८२।। नारायणी माया सभी की माता है, वह कृष्ण की भक्ति प्रदान करती है, क्योंकि विना माया की सेवा किये भगवान् कृष्ण की भक्ति प्राप्त नहीं होती है ।।८३।। वही नारायणी माया मूल प्रकृति एवं ईश्वरी कही जाती है, जो भगवान् कृष्ण की प्रिया, उनकी भक्ता और उनके समान अविनाशिनी है ।।८४।। वह तेजःस्वरूप और अपनी इच्छा से शरीर धारण करती है। असुरों के युद्ध में वह देवों के तेज द्वारा उत्पन्न हुई थी ।।८५।। दैत्यवृन्दों के संहार करने के अनन्तर देवी ने भारत में दक्ष के अनेक जन्म के तप के कारण उनकी

निहत्य दैत्यसंघांश्च दक्षपत्न्यां च भारते। ललाभ दक्षतपसा जन्म चानेकजन्मनः ॥८६॥
त्यक्त्वा देहं पितुर्यज्ञे सा सती तव निन्दया। जगाम देवी गोलोकं कृष्णशक्तिः सनातनी ॥८७॥
गृहीत्वा विग्रहं तस्या गुणरूपाश्रयं परम्। भ्रामंभ्रामं भारते त्वं विषण्णोऽभूः पुरा हर ॥८८॥
प्रबोधितो मया त्वं च श्रीशैलेषु सरित्तटे। ललाभ जन्म सा शैलकान्तायामचिरेण च ॥८९॥
करोतु पुण्यकं साध्वी सुव्रता सुव्रतं शिवा। राजसूयसहस्राणां पुण्यं शंकर पुण्यके ॥९०॥
राजसूयसहस्राणां व्रते यत्र धनव्ययः। न साध्यं सर्वसाध्वीनां व्रतमेतत्त्रिलोचन ॥९१॥
स्वयं गोलोकनाथश्च पुण्यकस्य प्रभावतः। पार्वतीगर्भजातश्च तव पुत्रो भविष्यति ॥९२॥
स्वयं देवगणानां स यस्त्वादीशः कृपानिधिः। गणेश इति विख्यातो भविष्यति जगत्त्रये ॥९३॥
यस्य स्मरणमात्रेण विघ्ननाशो भवेद्ध्रुवम्। जगतां हेतुनाऽनेन विघ्ननिघ्नाभिधो विभुः ॥९४॥
नानाविधानि द्रव्याणि यस्माद्देयानि पुण्यके। भुक्त्वा लम्बोदरत्वं च तेन लम्बोदरः स्मृतः ॥९५॥
शनिदृष्ट्या शिरश्छेदाद्गजवक्त्रेण योजितः। गजाननः शिशुस्तेन सर्वेषां सर्वसिद्धिदः ॥९६॥
दन्तभङ्गः परशुना पर्शुरामस्य वै यतः। हेतुना तेन विख्यातश्चैकदन्ताभिधः शिशुः ॥९७॥
पूज्यश्च सर्वदेवानामस्माकं जगतां विभुः। सर्वाग्रे पूजनं तस्य भविता मद्वरेण वै ॥९८॥

पत्नी में जन्म ग्रहण किया था ॥८६॥ अनन्तर उस सती ने अपने पिता के यज्ञ में तुम्हारी निन्दा होने के कारण अपनी देह का त्याग कर दिया और वह कृष्ण की शक्ति सनातनी देवी गोलोक चली गयी ॥८७॥ हे हर! पहले तुम गुण और रूप का परम आश्रयभूत सती का शरीर लेकर खिन्न मन से भारत में चारों ओर भ्रमण करते रहे ॥८८॥ पश्चात् श्री शैल पर नदी के किनारे मैंने तुम्हें (समझा-बुझाकर) प्रबुद्ध किया। पुनः अल्पकाल में ही उस देवी ने हिमालय-पत्नी मेना में जन्म ग्रहण किया ॥८९॥ अतः हे शंकर! वह साध्वी एवं सुव्रता शिवा (पार्वती) पुण्यक नामक सुव्रत अवश्य सुसम्पन्न करे, क्योंकि पुण्यक सम्पन्न करने में सहस्रों राजसूय यज्ञ का पुण्य प्राप्त होता है ॥९०॥ हे त्रिलोचन! जिस व्रत के सुसम्पन्न करने में सहस्रों राजसूय के समान धन का व्यय हो, वह व्रत सभी पतिव्रताओं के लिए साध्य नहीं है ॥९१॥ इस पुण्यक व्रत के प्रभाववश, पार्वती के गर्भ से स्वयं श्रीकृष्ण तुम्हारे पुत्र होंगे ॥९२॥ वह कृपानिधान स्वयं देवगणों का ईश होने के नाते तीनों लोकों में 'गणेश' नाम से विख्यात होगा ॥९३॥ जिसके स्मरण मात्र से विघ्नों का निश्चित नाश होगा, उस कारण समस्त जगत् में उस विभु का 'विघ्नेश्वर' नाम होगा ॥९४॥ इस पुण्यक व्रत में अनेक भाँति की वस्तुओं का दान होगा और उसके भक्षण से उसका पेट बढ़ जायगा, इसलिए वह 'लम्बोदर' भी कहलायेगा ॥९५॥ शनि के देखने मात्र से उसका शिर कट जायगा और गज (हाथी) का मुख उसके धड़ पर जोड़ दिया जायेगा। इसलिए उस बच्चे को 'गजानन' कहेंगे जो सभी को सिद्धि प्रदान करेगा ॥९६॥ परशुराम के फरसा द्वारा उसका एक दाँत टूट जायेगा इस कारण वह शिशु 'एकदन्त' नाम से प्रख्यात होगा ॥९७॥ यह हम सभी देवों और सारे जगत् का पूज्य होगा और मेरे वरदान द्वारा उस विभु का सब से पहले पूजन होगा ॥९८॥ मनुष्य

पूजासु सर्वदेवानामग्रे संपूज्य तं जनः। पूजाफलमवाप्नोति निर्विघ्नेन वृथाऽन्यथा ॥९९॥
गणेशं च दिनेशं च विष्णुं शंभुं हुताशनम्। दुर्गामेतान्संनिषेव्य पूजयेद्देवतान्तरम् ॥१००॥
गणेशपूजने विघ्नं निर्मूलं जगतां भवेत्। निर्व्याधिः सूर्यपूजायां शुचिः श्रीविष्णुपूजने ॥१०१॥
मोक्षश्च पापनाशश्च यशश्चैश्वर्यमुत्तमम्। तत्त्वज्ञानं सुतत्त्वानां बीजं शंकरपूजनात् ॥१०२॥
स्वबुद्धिशुद्धिजननं कीर्तितं वह्निपूजनम्। विधिसंस्कृतवह्नेस्तु पूजातो ज्ञानतो मृतिः ॥१०३॥
दाता भोक्ता च भवति शंकराग्निनिषेवणात्। हरिभक्तिपदं चैव परं दुर्गार्चनं शिवम् ॥१०४॥
विपरीतं त्रिजगतामेतेषां पूजनं विना। एवं क्रमो महादेव कल्पे कल्पेऽस्ति निश्चितम् ॥१०५॥
एते शश्वद्विद्यमाना नित्याः सृष्टिपरायणाः। आविर्भावतिरोभावौ चैतेषामीश्वरेच्छया ॥१०६॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र विरराम सभातले। प्रहृष्टा देवता विप्राः पार्वत्या सह शंकरः ॥१०७॥
इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० पुण्यकव्रताज्ञाग्रहणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सभी देवों के पूजन में सब से पहले उसकी पूजा कर के, पूजा का फल प्राप्त निर्विघ्न करेंगे अन्यथा व्यर्थ हो जायेगा ॥९९॥ इसीलिए गणेश, दिनेश, विष्णु, शम्भु, अग्नि और दुर्गा, इन देवों की अर्चना के उपरान्त ही अन्य देवों की अर्चना करनी चाहिए ॥१००॥ गणेश के पूजन से जगत् का सारा विघ्न नष्ट हो जाता है, सूर्य की पूजा से नीरोग, श्री विष्णु के पूजन से पवित्रता और शंकर के पूजन से मोक्ष, पाप-नाश, कीर्ति, परमोत्तम ऐश्वर्य, तत्वज्ञान और सुन्दर तत्त्वों का बीज प्राप्त होता है ॥१०१-१०२॥ अग्नि पूजन से अपनी बुद्धि शुद्ध होती है ऐसा कहा गया है। विधिपूर्वक संस्कृत अग्नि के पूजन से ज्ञान-मृत्यु प्राप्त होती है ॥१०३॥ शिव और अग्नि की सेवा करने से मनुष्य दाता एवं भोगी होता है और मंगलमय दुर्गार्चन भगवान् की भक्ति प्रदान करता है ॥१०४॥ तीनों लोकों में इन देवों के पूजन बिना अन्य का पूजन करना विपरीत होगा। हे महादेव ! प्रत्येक कल्प में इसी प्रकार का क्रम निश्चित है ॥१०५॥ ये सृष्टिपरायण देव हैं, अतः निरन्तर विद्यमान रहते हैं, भगवान् की इच्छा से इनका आविर्भाव (प्रकट होना) और तिरोभाव (अन्तर्हित होना) हुआ करता है ॥१०६॥ उस सभा में इतना कह कर भगवान् श्री हरि चुप हो गए और इसे सुन कर देवगण, ब्राह्मणवृन्द और पार्वती समेत शंकर जी अति प्रसन्न हुए ॥१०७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में
पुण्यक व्रत के लिये आज्ञा-ग्रहण नामक छठा अध्याय समाप्त ॥६॥

१ख. सुवृत्तीनां।

अथ सप्तमोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरेराज्ञां समादाय हरः संहृष्टमानसः। उवाच पार्वतीं प्रीत्या हरिसंलापमङ्गलम् ॥१॥
शिवाज्ञां च समादाय शिवा संहृष्टमानसा। वाद्यं च वादयामास मङ्गलं मङ्गलव्रते ॥२॥
सुस्नाता सुदती शुद्धा बिभ्रती धौतवाससी। संस्थाप्य रत्नकलशं शुक्लधान्योपरि स्थिरम् ॥३॥
आम्रपल्लवसंयुक्तं फलाक्षतसुशोभितम्। चन्द्रनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितम् ॥४॥
रत्नासनस्था रत्नाढ्या रत्नोद्भवसुता सती। रत्नसिंहासनस्थांश्च संपूज्य मुनिपुंगवान् ॥५॥
रत्नसिंहासनस्थं च संपूज्य सुपुरोहितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीरत्नभूषणभूषितम् ॥६॥
संस्थाप्य पुरतो भक्त्या दिक्पालान्रत्नभूषितान्। देवान्नरांश्च नागांश्च समर्च्य विधिबोधितम् ॥७॥
समर्च्य परया भक्त्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितान् ॥८॥
वह्निशुद्धैः सुवस्त्रैश्च सद्रत्नैर्भूषणैस्तथा। पूजाद्रव्यैश्च विविधैः पूजितान्पुण्यके मुने ॥९॥
समारेभे व्रतं देवी स्वस्तिवाचनपूर्वकम्। आवाह्याभीष्टदेवं तं श्रीकृष्णं मङ्गले घटे ॥१०॥
भक्त्या ददौ क्रमेणैव चोपचारांस्तु षोडश। यानि व्रते विधेयानि देयानि विविधानि च ॥११॥
प्रददौ तानि सर्वाणि प्रत्येकं फलदानि च। व्रतोक्तमुपहारं च दुर्लभं भुवनत्रये ॥१२॥

अध्याय ७

पार्वतीकृत व्रत का विधान तथा श्रीकृष्णस्तोत्र

नारायण बोले—भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य कर महादेव ने अतिहर्षित होकर भगवान् की सभी मांगलिक बातें सप्रेम पार्वती से बता दीं ॥१॥ पार्वती ने शिवकी आज्ञा से हर्षमग्न होकर उस मंगलव्रत में मांगलिक वाद्य बजवाना आरम्भ किया ॥२॥ सुन्दर दाँतों वाली पार्वती ने उत्तम स्नान से शुद्ध होकर दो उत्तम वस्त्र धारण किये और शुक्ल धान्य पर रत्न का दृढ़ कलश स्थापित किया, जो आम के पल्लव से युक्त, फल, अक्षत से सुशोभित, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से विराजमान था ॥३-४॥ रत्नों के उद्भवस्थान हिमालय की पुत्री सती पार्वती ने रत्नों से भूषित होकर रत्नसिंहासन को भूषित किया। अनन्तर रत्नसिंहासनों पर सुखासीन मुनिपुंगवों की अर्चना करके रत्नसिंहासनासीन पुरोहित का चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और रत्नों के आभूषणों से पूजन किया, फिर दिक्पालों को रत्नभूषित कर भक्तिपूर्वक सामने स्थापित किया तथा देवों, मनुष्यों और नागों की सविधि पूजा की ॥५-७॥ पश्चात् पराभक्ति से ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की चन्दन, अगरु, कस्तूरी और कुंकुम द्वारा अर्चना की ॥८॥ हे मुने! इस प्रकार अग्नि की भाँति शुद्ध उत्तम वस्त्रों, उत्तम रत्नों के भूषणों तथा अनेक भाँति की पूजन-सामग्रियों से सभी की पूजा करने के उपरान्त देवी ने स्वस्तिवाचनपूर्वक व्रतानुष्ठान आरम्भ किया उस मंगल-कलश में अभीष्ट देव भगवान् श्रीकृष्ण का आवाहन करके भक्तिपूर्वक क्रमशः सोलहों उपचार से उनकी अर्चना की। उस व्रत में विविध भाँति की जितनी वस्तुएँ दी जानी चाहिये थीं, उन्होंने प्रत्येक को वे समस्त वस्तुएँ प्रदान कीं ॥९–११½॥ एवं पतिव्रता पार्वती ने व्रतोपयुक्त, तीनों लोकों

तच्च सर्वं ददौ भक्त्या सुव्रते सुव्रता सती। दत्त्वा द्रव्याणि सर्वाणि वेदमन्त्रेण सा सती ॥१३॥
होमं च कारयामास त्रिलक्षं तिलसर्पिषाः। ब्राह्मणान्भोजयामास पूजयित्वाऽतिथींस्तथा ॥१४॥
भोजयामास सा देवी सुव्रते सुव्रता सती। प्रत्यहं सविधानं च चक्रे सा पूर्णवत्सरम् ॥१५॥
समाप्तिदिवसे विप्रस्तामुवाच पुरोहितः। सुव्रते सुव्रते मह्यं देहि त्वं पतिदक्षिणाम् ॥१६॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा विलप्य सुरसंसदि। मूर्च्छां प्राप महामाया मायामोहितचेतसा ॥१७॥
तां च ते मूर्च्छितां दृष्ट्वा प्रहस्य मुनिपुंगवाः। शंकरं प्रेषयामासुर्ब्रह्मा विष्णुश्च नारद ॥१८॥
संप्रार्थितः सभासद्भिः शिवां बोधयितुं तदा। शिवः समुद्यमं चक्रे प्रवक्तुं वदतां वरः ॥१९॥

महादेव उवाच

उत्तिष्ठ भद्रे भद्रं ते भविष्यति न संशयः। सांप्रतं चेतनं कृत्वा मदीयं वचनं शृणु ॥२०॥
शिवः शिवां तामित्युक्त्वा शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाम्। वक्षसि स्थापयामास कारयामास चेतनाम् ॥२१॥
हितं सत्यं मितं सर्वं परिणामसुखावहम्। यशस्करं च फलदं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥२२॥
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यद्वेदेन निरूपितम्। सर्वसंमतमिष्टं च धर्मार्थं धर्मसंसदि ॥२३॥
सर्वेषां कर्मणां देवि सारभूता च दक्षिणा। यशोदा फलदा नित्यं धर्मिष्ठे धर्मकर्मणि ॥२४॥

के जितने दुर्लभ उपहार थे वे उस व्रत में भक्तिपूर्वक सभी को पूर्णरूपेण समर्पित किये सभी द्रव्यों के दान के अनन्तर सती पार्वती ने वेदमन्त्रों द्वारा तिल, घी की तीन लाख आहुतियाँ अग्नि को समर्पित कीं। उस सुव्रत में सुव्रता पार्वती ने ब्राह्मण भोजन के अनन्तर अतिथियों का पूजन करके उन्हें भोजन कराया। इस प्रकार उन्होंने पूरे वर्ष तक प्रतिदिन सविधान व्रत किया ॥१२-१५॥ समाप्ति के दिन ब्राह्मण पुरोहित ने उनसे कहा—हे सुव्रते! इस सुन्दर व्रत में मुझे दक्षिणारूप में अपना पति प्रदान करो ॥१६॥ उनकी ऐसी बातें सुनकर पार्वती विलाप करने लगीं, अनन्तर महामाया पार्वती माया-मोहित चित्त होने से मूर्च्छित हो गयीं ॥१७॥ हे नारद! उन्हें मूर्च्छित देखकर मुनिपुंगवों ने हँसकर एवं ब्रह्मा विष्णु ने भी शंकर को उनके पास भेजा ॥१८॥ उस समय सभी समासद लोग पार्वती को उद्बुद्ध करने के लिए शंकर की प्रार्थना करने लगे। तब वक्ताओं में श्रेष्ठ शिव ने समझाने का प्रयत्न किया ॥१९॥

महादेव बोले—हे भद्रे! उठो! तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा। इस समय चैतन्य होकर हमारी बातें सुनो ॥२०॥ शिव ने पार्वती से, जिनके कण्ठ, होंठ और तालू सूख गये थे, इतना कहकर उन्हें अपने वक्षःस्थल से लगा लिया और सचेत करने लगे ॥२१॥ हितकर, सत्य, अल्प, परिणाम में सुखप्रद, यशस्कर एवं फलदायक वचन उन्होंने कहना प्रारम्भ किया ॥२२॥ हे देवि! इस विषय में वेद ने धर्मसभा में जो कुछ कहा है, वह सर्व-सम्मत, इष्ट (प्रिय) एवं धर्मार्थ है, उसे बता रहा हूँ, सुनो ॥२३॥ हे देवि! दक्षिणा सभी कर्मों का सार भाग है, वह धर्म-कर्म में नित्य यश एवं फल देने वाली है ॥२४॥

दैवं वा पैतृकं वाऽपि नित्यं नैमित्तिकं प्रिये। यत्कर्म दक्षिणाहीनं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥२५॥
दाता च कर्मणा तेन कालसूत्रं व्रजेद्ध्रुवम्। देहान्ते दैन्यमाप्नोति शत्रुणा परिपीडितः ॥२६॥
दक्षिणा विप्रमुद्दिश्य तत्कालं तु न दीयते। तन्मुहूर्ते व्यतीते तु दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ॥२७॥
चतुर्गुणा दिनातीते पक्षे शतगुणा भवेत्। मासे पञ्चशतघ्ना स्यात्षण्मासे तच्चतुर्गुणा ॥२८॥
संवत्सरे व्यतीते तु कर्म तन्निष्फलं भवेत्। दाता च नरकं याति यावद्वर्षसहस्रकम्[1] ॥२९॥
पुत्रपौत्रधनैश्वर्यं क्षयमाप्नोति पातकात्। धर्मो नष्टो भवेत्तस्य धर्महीने च कर्मणि ॥३०॥

विष्णुरुवाच

रक्षस्व धर्मं धर्मिष्ठे धर्मज्ञे धर्मकर्मणि। सर्वेषां च भवेद्रक्षा स्वधर्मपरिपालने ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

यश्च केन निमित्तेन न धर्मं परिरक्षति। धर्मे नष्टे च धर्मज्ञे तस्य[2] कर्ता विनश्यति ॥३२॥

धर्म उवाच

मां रक्ष यत्नतः साध्वि प्रदाय पतिदक्षिणाम्। मयि स्थिते महासाध्वि सर्वं भद्रं भविष्यति ॥३३॥

देवा ऊचुः

धर्मं रक्ष महासाध्वि कुरु पूर्णं व्रतं सति। वयं तव व्रते पूर्णे कुर्मस्त्वां पूर्णमानसाम् ॥३४॥

हे प्रिये! देवों और पितरों के सभी नित्य-नैमित्तिक कर्मों में जो कर्म दक्षिणाहीन होता है वह निष्फल होता है और उस कर्म के कारण दाता कालसूत्र नामक नरक में निश्चित पड़ता है तथा अन्त में दीनहीन होकर शत्रु द्वारा पीड़ित होता है। इसलिए उस समय यदि ब्राह्मण को दक्षिणा न दी गयी, तो उस मुहूर्त के बीत जाने पर दक्षिणा दुगुनी हो जाती है। दिन व्यतीत होने पर चौगुनी, पक्ष बीतने पर सौगुनी, मास में पाँच सौ गुनी, छह मास में उसकी चौगुनी और वर्ष बीतने पर वह कर्म निष्फल हो जाता है और सहस्र वर्ष पर्यन्त दाता नरक में निवास करता है तथा उस पातक द्वारा पुत्र-पौत्र, धन और ऐश्वर्य हो जाता है धर्मविहीन कर्म में उसका धर्म नष्ट हो जाता है ॥२५-३०॥

विष्णु बोले—हे धर्मिष्ठे! इस धर्म-कर्म में अपने धर्म की रक्षा करो, क्योंकि अपने धर्म का पालन करने से सब की रक्षा होती है ॥३१॥

ब्रह्मा बोले—हे धर्मज्ञे! किसी कारणवश जो अपने धर्म की रक्षा नहीं करता है, वह कर्ता धर्म के नष्ट होने पर स्वयं भी नष्ट हो जाता है ॥३२॥

धर्म बोले—हे साध्वि! पति को दक्षिणा में प्रदान कर मेरी रक्षा सप्रयत्न करो। हे महासाध्वि! मेरे रहने पर सब कल्याण ही होगा ॥३३॥

देवगण बोले—हे महासाध्वि! धर्म की रक्षा करो के अपना और व्रत पूरा करो। तुम्हारे व्रत के पूर्ण हो जाने पर हम लोग तुम्हें सफलमनोरथ करेंगे ॥३४॥

---

१ क. ०र्षशतं शुभे। २. क. ०स्य सर्वं वि०।

मुनय ऊचुः

कृत्वा साध्वि पूर्णहोमं देहि विप्राय दक्षिणाम्। स्थितेष्वस्मासु [1]भुवि ते किमभद्रं भविष्यति ॥३५॥

सनत्कुमार उवाच

शिवे शिवं देहि मह्यं न चेद्व्रतफलं त्यज। सुचिरं संचितस्यापि स्वात्मनस्तपसः फलम् ॥३६॥
कर्मण्यदक्षिणे साध्वि यागस्याहं तु तत्फलम्। प्राप्स्यामि यजमानस्य संपूर्णं कर्मणः फलम् ॥३७॥

पार्वत्युवाच

किं कर्मणा मे देवेशाः किं मे दक्षिणया मुने। किं पुत्रेण च धर्मेण यत्र भर्ता च दक्षिणा ॥३८॥
वृक्षार्चने फलं किं वै यदि भूमिर्न चार्च्यते। गते च कारणे कार्यं कुतः सस्यं कुतः फलम् ॥३९॥
प्राणास्त्यक्ताः स्वेच्छया चेद्देहैः स्यात्किं प्रयोजनम्। दृष्टिशक्तिविहीनेन चक्षुषा किं प्रयोजनम् ॥४०॥
शतपुत्रसमः स्वामी साध्वीनां च सुरेश्वराः। यदि भर्ता व्रते देयं किं व्रतेन सुतेन वा ॥४१॥
भर्तुरंशश्च तनयः केवलं भर्तृमूलकः। यत्र मूलं भवेद्भ्रष्टं तद्वाणिज्यं च निष्फलम् ॥४२॥

विष्णुरुवाच

पुत्रादपि परः स्वामी धर्मश्च स्वामिनः परः। नष्टे धर्मे च धर्मिष्ठे स्वामिना किं सुतेन वा ॥४३॥

मुनिवृन्द बोले—हे साध्वि ! हवन पूरा कर ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करो हे। धर्मज्ञे ! भूतल पर हम लोगों के रहते तुम्हारा क्या अमंगल होगा ? ॥३५॥

सनत्कुमार बोले—हे शिवे ! शिव को मुझे सौंप दो, अन्यथा व्रत का फल और अपने चिर काल से संचित किये हुए तप का फल परित्याग करो॥३६॥ हे साध्वि ! कर्म के दक्षिणाहीन होने पर इस याग का फल और यजमान के सम्पूर्ण कर्म का फल मुझे प्राप्त होगा॥३७॥

पार्वती बोलीं—हे देवेश ! एवं हे मुने ! मुझे कर्म और धर्म से क्या प्रयोजन है तथा पुत्र और धर्म लेकर क्या करूँगी जहाँ पति ही दक्षिणा में जा रहा है॥३८॥ क्योंकि यदि भूमि की अर्चना न हो तो वृक्ष की अर्चना से क्या फल हो सकता है—कारण ही नहीं है तो कार्य सस्य और फल की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? ॥३९॥ यदि प्राण स्वेच्छा से चले गये तो देह से क्या प्रयोजन। देखने की शक्ति से हीन नेत्र किस काम आ सकता है ? ॥४०॥ हे सुरेश्वरो ! पतिव्रता स्त्रियों के लिए स्वामी सौ पुत्रों के समान होता है। यदि व्रत में पति ही देय है तो व्रत और पुत्र से क्या प्रयोजन है ? ॥४१॥ पुत्र भर्ता का अंश होता है और उसका कारण स्वामी ही होता है। जहाँ मूलधन नष्ट हो जाता है वहाँ उसका व्यापार भी निष्फल हो जाता है ॥४२॥

विष्णु बोले—स्वामी पुत्र से बढ़कर अवश्य होता है किन्तु धर्म स्वामी से भी उत्तम है, अतः धर्म के नष्ट हो जाने पर स्वामी या पुत्र दोनों से क्या प्रयोजन ? ॥४३॥

---

१. ख धर्मज्ञे कि०।

ब्रह्मोवाच

स्वामिनश्च परो धर्मो धर्मात्सत्यं च सुव्रते। सत्यं संकल्पितं कर्म न तु भ्रष्टं कुरु व्रतम् ॥४४॥

पार्वत्युवाच

निरूपितश्च वेदेषु स्वशब्दो धनवाचकः। तद्यस्यास्तीति स स्वामी वेदज्ञ शृणु मद्वचः ॥४५॥
तस्य दाता सदा स्वामी न च स्वं स्वामितां लभेत्। अहोऽव्यवस्था भवतां वेदज्ञानामबोधतः[1] ॥४६॥

धर्म उवाच

पत्नी विनाऽन्यं स्वं साध्वि स्वामिनं दातुमक्षमा। दम्पती ध्रुवमेकाङ्गौ द्वयोर्दाने द्वकौ समौ ॥४७॥

पार्वत्युवाच

पिता ददाति जामात्रे स च गृह्णाति तत्सुताम्। न श्रुतं विपरीतं च श्रुतौ श्रुतिपरायणाः ॥४८॥

देवा ऊचुः

बुद्धिस्वरूपा त्वं दुर्गे बुद्धिमन्तो वयं त्वया। वेदज्ञे वेदवादेषु के वा त्वां जेतुमीश्वराः ॥४९॥
निरूपिता पुण्यके तु व्रते स्वामी च दक्षिणा। श्रुतौ श्रुतो यः स धर्मो विपरीतो ह्यधर्मकः ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—हे सुव्रते! स्वामी से बढ़ कर धर्म और धर्म से बढ़कर सत्य होता है। तुम्हारा यह व्रत सत्य संकल्पित कर्म है, अतः इसे भ्रष्ट न करो ॥४४॥

पार्वती बोलीं—हे वेदज्ञ! मेरी बातें सुनो। वेदों में स्वशब्द धन अर्थ में प्रयुक्त हुआ है अतः वह जिसका है वह स्वामी है ॥४५॥ उस (धन) का दाता सदा स्वामी होता है, किन्तु धन स्वामित्व को प्राप्त नहीं करता। अतः आप वेदज्ञानियों की अव्यवस्था पर, जो अज्ञान द्वारा की गयी है, आश्चर्य हो रहा है ॥४६॥

धर्म बोले—हे साध्वि! पत्नी अन्य धन को छोड़ कर स्वामी देने में असमर्थ रहती है, क्योंकि दम्पति (स्त्री पुरुष मिलकर) निश्चित एक अंग होते हैं अतः दोनों के दान में दोनों समान हैं ॥४७॥

पार्वती बोलीं—हे श्रुतिपरायणवृन्द! पिता जामाता (दामाद) को दान देता है और वह उसकी पुत्री को ग्रहण करता है, वेद में इसके विपरीत कुछ नहीं सुना गया है ॥४८॥

देववृन्द बोले—हे दुर्गे! हे वेदज्ञे! तुम बुद्धिस्वरूप हो और हम लोग तुम्हारे द्वारा बुद्धिमान् हैं, अतः वेद के वाद-विवाद में तुम्हें जीतने में कौन समर्थ हो सकता है ॥४९॥ इस पुण्यकव्रत में स्वामी ही दक्षिणा रूप में देने को कहा गया है इसलिए वेद में जो सुना गया है वह धर्म है और उससे विपरीत अधर्म ॥५०॥

---

१ क. ० ज्ञानमबोधताम्।

पार्वत्युवाच

केवलं वेदमाश्रित्य कः करोति विनिर्णयम्। बलवाँल्लौकिको वेदाल्लोकाचारं च कस्त्यजेत् ॥५१॥
वेदे प्रकृतिपुंसोश्च गरीयान्पुरुषो ध्रुवम्। निबोधत सुराः प्राज्ञा बालाऽहं कथयामि किम् ॥५२॥

बृहस्पतिरुवाच

न पुमांसं विना सृष्टिर्न साध्वि प्रकृतिं विना। श्रीकृष्णश्च द्वयोः स्रष्टा समौ प्रकृतिपूरुषौ ॥५३॥

पार्वत्युवाच

[1]सर्वस्रष्टा च यः कृष्णः सोंऽशेन सगुणः पुमान्। पुमान्गरीयान्प्रकृतेस्तथैव न ततश्च सा ॥५४॥
एतस्मिन्नन्तरे देवा मुनयस्तत्र संसदि। रत्नेन्द्रसाररचितमाकाशे ददृशू रथम् ॥५५॥
पार्षदैः संपरिवृतं सर्वैः श्यामैश्चतुर्भुजैः। वनमालापरिवृतै रत्नभूषणभूषितैः ॥५६॥
अवरुह्य ततो[2] यानादाजगाम सभातलम्। तुष्टुवुस्तं सुरेन्द्रास्ते देवं वैकुण्ठवासिनम् ॥५७॥
शङ्खचक्रगदापद्मधरमीशं चतुर्भुजम्। लक्ष्मीसरस्वतीकान्तं शान्तं तं सुमनोहरम् ॥५८॥
सुखदृश्यमभक्तानामदृश्यं कोटिजन्मभिः। कोटिकन्दर्पलावण्यं कोटिचन्द्रसमप्रभम् ॥५९॥
अमूल्यरत्नरचितचारुभूषणभूषितम्। सेव्यं ब्रह्मादिदेवैश्च सेवकैः सततं स्तुतम् ॥६०॥

पार्वती बोलीं—केवल वेद के ही आधार पर कौन निर्णय कर सकता है, क्योंकि वेद से लोकाचार बलवान् होता है, इसलिए उसका त्याग कौन कर सकता है ॥५१॥ वेद में प्रकृति-पुरुष में पुरुष को ही श्रेष्ठ बताया गया है। हे प्राज्ञ सुरगण! सुनिए, मैं बाला क्या कह सकती हूँ ॥५२॥

बृहस्पति बोले—हे साध्वि! न पुरुष के बिना सृष्टि हो सकती है और न प्रकृति (स्त्री) के बिना सृष्टि हो सकती है। भगवान् श्रीकृष्ण ही दोनों के स्रष्टा हैं और प्रकृति-पुरुष दोनों समान हैं ॥५३॥

पार्वती बोलीं—सबका सर्जन करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ही अपने अंश से सगुण पुरुष होते हैं, इसलिए प्रकृति से पुरुष श्रेष्ठ होता है और उसी प्रकार पुरुष से प्रकृति श्रेष्ठ नहीं होती ॥५४॥ इसी बीच देवों और मुनियों ने उसी सभा में आकाश में रत्नेन्द्रों के सारभाग से सुरचित एक उत्तम रथ देखा, जो श्याम वर्ण, वनमाला एवं रत्नों के भूषणों से भूषित और चार भुजाओं वाले पार्षदों से आच्छन्न था। अनन्तर उस रथ से उतर कर प्रसन्नमुख नारायण सभा में आये ॥५५-५६½॥ उन सुरवरों ने उस वैकुण्ठवासी भगवान् की स्तुति करना आरम्भ किया, जो शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये, सबके ईश, चार भुजाओं से सुशोभित, लक्ष्मी-सरस्वती के पति, शान्तस्वरूप, अति मनोहर, देखनेमात्र से सुख देने वाले, अभक्तों को करोड़ों जन्मों में भी न दिखायी देने वाले, करोड़ों काम के समान सुन्दर, करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रभा से पूर्ण, अमूल्य रत्नों के सुन्दर आभूषणों से भूषित, ब्रह्मा आदि देवों से सुसेव्य और सेवकों द्वारा निरन्तर स्तुत हो रहे थे ॥५७-६०॥ उनकी कान्ति से चारों ओर आच्छन्न

---

१ क. यः कृष्णः प्रकृतेः स्रष्टा सो०। २ ख. मुदा।

तद्भासा संपरिच्छन्नैर्वेष्टितं च सुरर्षिभिः। वासयामास तं ते च रत्नसिंहासने वरे ॥६१॥
तं प्रणेमुश्च शिरसा ब्रह्मशक्तिशिवादयः। संपुटाञ्जलयः सर्वे पुलकाङ्गाश्रुलोचनाः ॥६२॥
सस्मितस्तांश्च पप्रच्छ सर्वं मधुरया गिरा। प्रबोधितः सुबोधज्ञः प्रववर्तुमुपचक्रमे ॥६३॥

नारायण उवाच

सह बुद्ध्या बुद्धिमन्तो न वक्तुमुचितं सुराः। सर्वे शक्त्या यया विश्वे शक्तिमन्तो हि जीविनः ॥६४॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं जगत्। सत्यं सत्यं विना मां च मया शक्तिः प्रकाशिता ॥६५॥
आविर्भूता च सा मत्तः सृष्टौ देवी मदिच्छया। तिरोहिता च साऽशेषे सृष्टिसंहरणे मयि ॥६६॥
प्रकृतिः सृष्टिकर्त्री च सर्वेषां जननी परा। मम तुल्या च मन्माया तेन नारायणी स्मृता ॥६७॥
सुचिरं तपसा तप्तं शंभुना ध्यायता च माम्। तेन तस्मै मया दत्ता तपसां फलरूपिणी ॥६८॥
व्रतं च लोकशिक्षार्थमस्या न स्वार्थमेव च। स्वयं व्रतानां तपसां फलदात्री जगत्त्रये ॥६९॥
मायया मोहिताः सर्वे किमस्या वास्तवं व्रतम्। साध्यमस्या व्रतफलं कल्पे कल्पे पुनः पुनः ॥७०॥
सुरेश्वरा मदंशाश्च ब्रह्मशक्तिमहेश्वराः। कलाः कलांशरूपाश्च जीविनश्च सुरादयः ॥७१॥
मृदा विना घटं कर्तुं कुलालश्च यथाऽक्षमः। विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः ॥७२॥
विना शक्त्या तथाऽहं च स्वसृष्टिं कर्तुमक्षमः। शक्तिप्रधाना सृष्टिश्च सर्वदर्शनसंमता ॥७३॥

देवगण उन्हें घेरे हुए थे। अनन्तर ब्रह्मा, शक्ति और शिव आदि देवों ने उन्हें उत्तम रत्न सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया और शिर से प्रणाम करने लगे। उस समय, सब हाथ जोड़े सजल नयन होकर पुलकायमान हो रहे थे। मन्द मुसुकान करते हुए भगवान् ने मधुर वाणी द्वारा उन देवों से सब पूछ लिया। वृत्तान्त जानने पर उत्तम बोध के ज्ञाता भगवान् ने कहना आरम्भ किया ॥६१-६३॥

नारायण बोले—बुद्धि (स्वरूपिणी पार्वती) के साथ बुद्धिमान् देवों का वाद-विवाद करना उचित नहीं है, क्योंकि समस्त विश्व में उसी शक्ति द्वारा सभी लोग सशक्त और जीवित हैं। इसीलिए ब्रह्मा आदि से लेकर तृणपर्यन्त समस्त जगत प्राकृतिक कहा जाता है। यह बात सत्य एवं दृढ़ सत्य है कि—मैंने पुरुष के बिना शक्ति को प्रकाशित किया है ॥६४-६५॥ सृष्टि में वह देवी मेरी इच्छा से मेरे द्वारा प्रकट होती है और सम्पूर्ण सृष्टि का संहार होने पर मुझ में अन्तर्हित हो जाती है ॥६६॥ प्रकृति सृष्टि करने के नाते सभी लोगों की श्रेष्ठ जननी है। यह मेरी माया मेरे समान है, अतः इसे 'नारायणी' कहते हैं ॥६७॥ मेरा ध्यान करते हुए शम्भु ने चिरकाल तक तप किया था, इसी लिए मैंने उनके तप के फलस्वरूप यह उन्हें सौंप दी थी ॥६८॥ यह (सुपुण्यक) व्रत इन्होंने लोक-शिक्षार्थ सम्पन्न किया है, इसमें इनका कुछ स्वार्थ नहीं है, क्योंकि तीनों लोकों में व्रतों और तपस्याओं के फल यह स्वयं प्रदान करती है ॥६९॥ तुम सभी लोग माया से मोहित हो गये हो, नहीं तो इनका यह वास्तविक व्रत है क्या? प्रत्येक कल्प में इस व्रत का फल इन्हें बार-बार प्राप्त होता रहता है ॥७०॥ देवेश्वर ब्रह्मा, शक्ति और महेश्वर मेरे अंश हैं और जीव देवादिगण कला एवं कलांशरूप हैं ॥७१॥ जिस प्रकार बिना मिट्टी के घड़ा बनाने में कुम्हार असमर्थ होता है, बिना सुवर्ण के सुनार कुण्डल बनाने में असमर्थ रहता है, उसी प्रकार बिना शक्ति के मैं सृष्टि करने में असमर्थ रहता

अहमात्मा हि निर्लिप्तोऽदृश्यः साक्षी च देहिनाम्। देहाः प्राकृतिकाः सर्वे नश्वराःपाञ्चभौतिकाः ॥७४॥
अहं नित्यः शरीरी च भानुविग्रहविग्रहः। सर्वाधारा सा प्रकृतिः सर्वात्माऽहं जगत्सु च ॥७५॥
अहमात्मा मनो ब्रह्मा ज्ञानरूपो महेश्वरः। पञ्चप्राणाः स्वयं विष्णुर्बुद्धिः प्रकृतिरीश्वरी ॥७६॥
[1]मेधानिद्रादयश्चैताः सर्वाश्च प्रकृतेः कलाः। सा च शैलेन्द्रकन्यैषा त्विति वेदे निरूपितम् ॥७७॥
अहं गोलोकनाथश्च वैकुण्ठेशः सनातनः। गोपीगोपैः परिवृतस्तत्रैव द्विभुजः स्वयम् ॥
चतुर्भुजोऽत्र देवेशो लक्ष्मीशः पार्षदैर्वृतः ॥७८॥
ऊर्ध्वं परश्च वैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनात्। ममाऽऽश्रयश्च गोलोको यत्राहं[2] गोपिकापतिः ॥७९॥
व्रताराध्यः स द्विभुजः स च तत्फलदायकः। यद्रूपं चिन्तयेद्यो हि तच्च तत्फलदायकः ॥८०॥
व्रतं पूर्णं कुरु शिवे शिवं दत्त्वा च दक्षिणाम्। पुनः समुचितं मूल्यं दत्त्वा नाथं ग्रहीष्यसि ॥८१॥
विष्णुदेहा यथा गावो विष्णुदेहस्तथा शिवः। द्विजाय दत्त्वा गोमूल्यं गृहाण स्वामिनं शुभे ॥८२॥
यज्ञपत्नीं यथा दातुं क्षमः स्वामी सदैव तु। तथा सा स्वामिनं दातुमीश्वरीति श्रुतेर्मतम् ॥८३॥
इत्युक्त्वा स सभामध्ये तत्रैवान्तरधीयत। हृष्टास्ते सा च संहृष्टा दक्षिणां दातुमुद्यता ॥८४॥
कृत्वा शिवा पूर्णहोमं सा शिवं दक्षिणां ददौ। स्वस्तीत्युक्त्वा च जग्राह कुमारो देवसंसदि ॥८५॥

हूँ। सृष्टि में शक्ति प्रधान है, ऐसा समस्त दर्शन शास्त्रों का मत है ॥७२-७३॥ मैं निर्लिप्त, अदृश्य और समस्त देहधारी जीवों का साक्षी आत्मा हूँ। सभी देह प्राकृतिक, नश्वर एवं पाँच भूतों से निर्मित हैं ॥७४॥ सूर्य के समान प्रकाशमान शरीर वाला मैं नित्य हूँ। जगत में प्रकृति सबकी आधारस्वरूपा है और मैं सबका आत्मा हूँ ॥७५॥ मैं आत्मा हूँ, ब्रह्मा मन हैं, महेश्वर ज्ञानरूप हैं, स्वयं विष्णु पाँचों प्राण स्वरूप हैं, ईश्वरी प्रकृति बुद्धिरूप और मेधा तथा निद्रा आदि ये सब प्रकृति की कलायें हैं। यह प्रकृति हिमालय की कन्या है, ऐसा वेद में बताया गया है ॥७६-७७॥ मैं गोलोक का अधीश्वर, वैकुण्ठ का स्वामी, सनातन और गोप-गोपियों से आवृत रहकर वहाँ स्वयं दो भुजाएँ धारण करता हूँ तथा यहाँ चार भुजाएँ धारण करके देवों का अधीश्वर, लक्ष्मी का स्वामी एवं पार्षदों से घिरा हुआ हूँ ॥७८॥ वैकुण्ठ से पचास करोड़ योजन ऊपर गोलोक में मेरा स्थान है जहाँ मैं गोपिकाओं का पति, व्रत का आराध्य देव एवं दो भुजाओं से भूषित रहकर व्रतों का फल देता हूँ। जो जिस रूप का चिन्तन करता है, उसे वह फल प्रदान करता हूँ ॥७९-८०॥ अतः हे शिवे ! शिव को दक्षिणा में देकर तुम अपना व्रत पूरा करो और फिर उचित मूल्य देकर अपना स्वामी ग्रहण करो ॥८१॥ क्योंकि हे शुभे ! विष्णु की देह जैसे गौएँ हैं वैसे ही विष्णु की देह शिव भी हैं, इसलिए ब्राह्मण को गो मूल्य देकर अपना पति लौटा लो ॥८२॥ जिस प्रकार स्वामी यज्ञ-पत्नी (दक्षिणा) देने में समर्थ होता है उसी भाँति वह भी स्वामी का दान करने में समर्थ है, ऐसा वेद का मत है ॥८३॥ इतना कह कर नारायण भगवान् सभा के मध्य में वहीं अन्तर्हित हो गये। देवों आदि सभासदों को बड़ा हर्ष हुआ और पार्वती अत्यन्त सन्तुष्ट होकर दक्षिणा देने के लिए तैयार हो गयीं ॥८४॥ देवों की सभा में शिवा ने पूर्णाहुति करके शिव को दक्षिणा में दे दिया और 'स्वस्ति' कह कर कुमार ने ग्रहण कर लिया ॥८५॥ उस

---

१ क. शक्ति०। २ क. कमलाप०।

उवाच दुर्गा संत्रस्ता शुष्ककण्ठौष्ठतालुका। कृताञ्जलिपुटा विप्रं हृदयेन विदूयता ॥८६॥

पार्वत्युवाच

गोमूल्यं मत्पतिसममिति वेदे निरूपितम्। गवां लक्षं प्रयच्छामि देहि मत्स्वामिनं द्विज ॥८७॥
तदा दास्यामि विप्रेभ्यो दानानि विविधानि च। आत्महीनो हि देहश्च कर्म किं कर्तुमीश्वरः ॥८८॥

सनत्कुमार उवाच

गवां लक्षेण मे देवि[1] विप्रस्य किं प्रयोजनम्। [2]दत्तस्यामूल्यरत्नस्य गवां प्रत्यर्पणेन च ॥८९॥
स्वस्य स्वस्य स्वयं दाता लोकः सर्वो जगत्त्रये। कर्तुरेवेप्सितं कर्म भवेत्किं वा परेच्छया ॥९०॥
दिगम्बरं पुरः कृत्वा भ्रमिष्यामि जगत्त्रयम्। बालकानां बालिकानां समूहस्मितकारणम् ॥९१॥
इत्युक्त्वा ब्रह्मणः पुत्रो गृहीत्वा शंकरं मुने। संनिधौ वासयामास तेजस्वी देवसंसदि ॥९२॥
दृष्ट्वा शिवं गृह्यमाणं कुमारेण च पार्वती। समुद्यता तनुं त्यक्तुं शुष्ककण्ठौष्ठतालुका ॥९३॥
विचिन्त्य मनसा साध्वीत्येवमेव दुरत्ययम्। न दृष्टोऽभीष्टदेवश्च न च प्राप्तं फलं व्रते ॥९४॥
एतस्मिन्नन्तरे देवाः पार्वतीसहितास्तदा। सद्यो ददृशुराकाशे तेजसां निकरं परम् ॥९५॥
कोटिसूर्यप्रभोर्ध्वं च प्रज्वलन्तं दिशो दश। कैलासशैलं पुरतः सर्वदेवादिभिर्युतम् ॥९६॥

समय दुर्गा के कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये; संत्रस्त होकर हाथ जोड़े एवं हार्दिक दुःख प्रकट करती हुई उन्होंने कहा ॥८६॥

पार्वती बोलीं—हे द्विज ! गो रूप मूल्य हमारे पति के समान है, ऐसा वेद में कहा गया है। इसलिए मैं आपको एक लाख गौएँ दे रही हूँ, मेरे स्वामी को लौटा दीजिए ॥८७॥ तब मैं ब्राह्मणों को अनेक भाँति के दान प्रदान करूँगी। अन्यथा आत्मरहित देह क्या कर्म करने में कभी समर्थ हो सकती है? ॥८८॥

सनत्कुमार बोले—हे देवि ! मुझ ब्राह्मण को लाख गौओं की आवश्यकता नहीं है—दिये हुए अमूल्य रत्न को गौओं से बदलना नहीं चाहता ॥८९॥ तीनों लोकों में सभी लोग अपने-अपने धन के दाता स्वयं होते हैं (अन्य नहीं) और करने वाले का अभिलषित कर्म क्या कहीं दूसरे की इच्छा से सम्पन्न होता है? ॥९०॥ मैं दिगम्बर (शिव) को आगे किये तीनों लोकों में भ्रमण करूँगा, जो बालक-बालिकाओं के हास्य का एक कारण होगा ॥९१॥ हे मुने ! तेजस्वी ब्रह्मपुत्र (सनत्कुमार) ने उस देवसभा में इतना कहकर शिव को अपने समीप बैठा लिया ॥९२॥ पार्वती ने शिव को पकड़ते हुए कुमार को देखकर अपना शरीर त्यागना निश्चित कर लिया। उनके कण्ठ, होंठ और तालू सूख गये ॥९३॥ उस पतिव्रता ने मन से सोचा कि यह कैसी कठिन बात हुई कि—इस व्रत में न अभीष्ट देव (भगवान् श्रीकृष्ण) ही दिखाई पड़े और न फल ही प्राप्त हुआ ॥९४॥ इसी बीच देवों के साथ उन्होंने आकाश में तेजों का समूह देखा, जो करोड़ों सूर्य की प्रभा से उत्कृष्ट तथा दसों दिशाओं को प्रज्वलित कर रहा था। वह कैलाशपर्वत

---

१ ख. वत्सुना। २ क. ददाति विप्रोऽमूल्यं च गवां प्रत्यर्पणेन कः।

सर्वाश्रयं गणाच्छन्नं विस्तीर्णं मण्डलाकृतिम्। तच्च दृष्ट्वा भगवतस्तुष्टुवुस्ते क्रमेण च ॥९७॥

विष्णुरुवाच

ब्रह्माण्डानि च सर्वाणि यल्लोमविवरेषु च। सोऽयं ते षोडशांशश्च के वयं यो महाविराट् ॥९८॥

ब्रह्मोवाच

वेदोपयुक्तं दृश्यं यत्प्रत्यक्षं द्रष्टुमीश्वर। स्तोतुं तद्वर्णितुमहं शक्तः किं स्तौमि तत्परः ॥९९॥

महादेव उवाच

ज्ञानाधिष्ठातृदेवोऽहं स्तौमि ज्ञानपरं च किम्। सर्वानिर्वचनीयं तं त्वां च स्वेच्छामयं विभुम् ॥१००॥

धर्म उवाच

अदृश्यमवतारेषु यद्दृश्यं सर्वजन्तुभिः। किं स्तौमि तेजोरूपं तद्भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१०१॥

देवा ऊचुः

के वयं त्वत्कलांशाश्च किं वा त्वां स्तोतुमीश्वराः। स्तोतुं न शक्ता वेदाद्यं न च शक्ता सरस्वती ॥१०२॥

मुनय ऊचुः

वेदान्पठित्वा विद्वांसो वयं किं वेदकारणम्। स्तोतुमीशा न वाणी च त्वां वाङ्मनसयोःपरम् ॥१०३॥

के सामने समस्त देवों से युक्त, सबके आश्रय रूप, गणों से आच्छन्न, विस्तीर्ण और मण्डलाकार था। भगवान् के उस रूप को देखकर देवता क्रमशः स्तुति करने लगे ॥९५-९७॥

विष्णु बोले—जिसके लोम-छिद्रों में समस्त ब्रह्माण्ड सुस्थित हैं, वह महाविराट् तुम्हारा सोलहवाँ अंश है, तो हम लोगों की क्या गणना है? ॥९८॥

ब्रह्मा बोले—हे ईश्वर! वेद में कहे हुए दृश्य पदार्थ को, जो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है, उसी की स्तुति और वर्णन करने में मैं समर्थ हूँ। और जो उससे परे है उसकी क्या स्तुति करूँ? ॥९९॥

महादेव बोले—मैं ज्ञान का अधिष्ठातृ देव हूँ, किन्तु जो ज्ञान से परे, सबसे अनिर्वचनीय, स्वेच्छामय एवं विभु (व्यापक) हैं उनकी क्या स्तुति करूँ? ॥१००॥

धर्म बोले—जिस अदृश्य को अवतार होने पर ही समस्त जीव जन्तु देख सकते हैं, उस तेजःस्वरूप और भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाले (देव) की क्या स्तुति करूँ? ॥१०१॥

देवगण बोले—जिनकी स्तुति करने में वेद समर्थ नहीं हैं, सरस्वती भी असमर्थ हैं, उनकी स्तुति करने में आप के कलांश रूप हम लोग समर्थ कैसे हो सकते हैं? ॥१०२॥

मुनिगण बोले—जो वेद के मूल कारण हैं, वाणी-मन से परे हैं और जिनकी स्तुति करने में सरस्वती भी असमर्थ हैं, उनकी स्तुति केवल वेद पढ़ने के नाते हम लोग कैसे कर सकते हैं? ॥१०३॥

सरस्वत्युवाच

वागधिष्ठातृदेवीं मां वदन्ते वेदवादिनः। किंचिन्न शक्ता त्वां स्तोतुमहो वाङ्मनसोः परम् ॥१०४॥

सावित्र्युवाच

वेदप्रसूरहं नाथ सृष्टा त्वत्कलया पुरा। किं स्तौमि स्त्रीस्वभावेन सर्वकारणकारणम् ॥१०५॥

लक्ष्मीरुवाच

त्वदंशविष्णुकान्ताऽहं जगत्पोषणकारिणी। किं स्तौमि त्वत्कलासृष्टा जगतां बीजकारणम् ॥१०६॥

हिमालय उवाच

हसन्ति सन्तो मां नाथ कर्मणा स्थावरं परम्। स्तोतुं समुद्यतं क्षुद्रः किं स्तौमि स्तोतुमक्षमः ॥१०७॥
क्रमेण सर्वे तं स्तुत्वा देव्या विररमुर्मुने। देव्यश्च मुनयः सर्वे पार्वती स्तोतुमुद्यता ॥१०८॥
धौतवस्त्रा जटाभारं बिभ्रती सुव्रता व्रते। प्रेरिता परमात्मानं व्रताराध्यं शिवेन च ॥१०९॥
ज्वलदग्निशिखारूपा तेजोमूर्तिमती सती। तपसां फलदा माता जगतां सर्वकर्मणाम् ॥११०॥

पार्वत्युवाच

कृष्ण जानासि मां भद्र नाहं त्वां ज्ञातुमीश्वरी। के वा जानन्ति वेदज्ञा वेदा वा वेदकारकाः ॥१११॥

सरस्वती बोलीं—यद्यपि वेदवादी लोग मुझे वागधिष्ठात्री देवी कहते हैं, किन्तु मैं किञ्चिन्मात्र भी आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हूँ, क्योंकि आप वाणी और मन से परे हैं ॥१०४॥

सावित्री बोलीं—हे नाथ! मैं वेद-जननी अवश्य हूँ, पूर्वकाल में आपकी कला द्वारा मेरी सृष्टि हुई है, किन्तु स्त्रीस्वभाव वश मैं समस्त कारणों के भी कारण आपकी स्तुति कैसे कर सकती हूँ ? ॥१०५॥

लक्ष्मी बोलीं—मैं आपके अंश से उत्पन्न विष्णु की प्रिया हूँ, सारे जगत् का पालन-पोषण करती हूँ, किन्तु आपकी कला द्वारा मेरा जन्म हुआ है अतः मैं आप की क्या स्तुति कर सकती हूँ जो जगत् के बीज कारण हैं ? ॥१०६॥

हिमालय बोले—हे नाथ! परम स्थावर होने के नाते मेरा सन्त लोग उपहास करते हैं। मैं क्षुद्र हूँ, स्तुति करने के लिए तैयार हूँ किन्तु असमर्थतावश क्या स्तुति करूँ ? ॥१०७॥

हे मुने! इस प्रकार देवगण, देवियों और मुनियों के क्रमशः स्तुति करके चुप हो जाने पर पार्वती स्तुति करने के लिए तैयार हो गयीं, जो उस व्रत में धौत वस्त्र धारण किये, जटाभार से भूषित, सुव्रता, शिव जी द्वारा व्रत के आराध्य देव परमात्मा श्रीकृष्ण की स्तुति के लिए प्रेरित, प्रज्वलित अग्नि की शिखा स्वरूप, मूर्तिमान् तेजोरूप, सती, तप और समस्त कर्मों के फल देने वाली तथा जगज्जननी थीं ॥१०८–११०॥

पार्वती बोलीं—हे कृष्ण! आप मुझे जानते हैं किन्तु मैं आपको जानने में असमर्थ हूँ। वेद जानने वाले, समस्त वेद या वेदकर्ता क्या आपको जानते हैं (अर्थात् कभी नहीं जान सकते) ॥१११॥ जब तुम्हारे अंश तुम्हें नहीं

त्वदंशास्त्वां न जानन्ति कथं ज्ञास्यन्ति ते कलाः। त्वं चापि तत्त्वं जानासि किमन्ये ज्ञातुमीश्वराः ॥११२॥
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमोऽव्यक्तः स्थूलात्स्थूलतमो महान्। विश्वस्त्वं विश्वरूपश्च विश्वबीजं सनातनः ॥११३॥
कार्यं त्वं कारणं त्वं च कारणानां च कारणम्। तेजःस्वरूपो भगवान्निर्विकारो निराश्रयः ॥११४॥
निर्लिप्तो निर्गुणः साक्षी स्वात्मारामः परात्परः। प्रकृतीशो विराड्बीजं विराड्रूपस्त्वमेव च ॥११५॥
सगुणस्त्वं प्राकृतिकः कलया सृष्टिहेतवे। प्रकृतिस्त्वं पुमांस्त्वं च त्वदन्यो न क्वचिद्भवेत् ॥११६॥
जीवस्त्वं साक्षिणो भोगी स्वात्मनः प्रतिबिम्बकम्। कर्म त्वं कर्मबीजं त्वं कर्मणां फलदायकः ॥११७॥
ध्यायन्ति योगिनस्तेजस्त्वदीयमशरीरि यत्। केचिच्चतुर्भुजं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ॥११८॥
वैष्णवाश्चैव साकारं कमनीयं मनोहरम्। शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ॥११९॥
द्विभुजं कमनीयं च किशोरं [1]श्यामसुन्दरम्। शान्तं गोपाङ्गनाकान्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥१२०॥
एवं तेजस्विनं भक्ताः सेवन्ते संततं मुदा। ध्यायन्ति योगिनो यत्तत्कुतस्तेजस्विनं विना ॥१२१॥
तत्तेजो बिभ्रतां देव देवानां तेजसा पुरा। आविर्भूता सुराणां च वधाय ब्रह्मणा स्तुता ॥१२२॥
नित्या तेजः स्वरूपाऽहं धृत्वा वै विग्रहं विभो। स्त्रीरूपं कमनीयं च विधाय समुपस्थिता ॥१२३॥
मायया तव मायाऽहं मोहयित्वाऽसुरान्पुरा। निहत्य सर्वाञ्छैलेन्द्रमगमं तं हिमालयम् ॥१२४॥

जानते हैं तो कलाएँ कैसे जान सकती हैं? तत्त्व तो तुम्हीं जानते हो क्या अन्य लोग भी जानने में समर्थ हो सकते हैं? (अर्थात् कभी नहीं) ॥११२॥ क्योंकि तुम सूक्ष्म से सूक्ष्म, अव्यक्त (अस्पष्ट), स्थूल से महान् स्थूलतम हो, तुम विश्व हो, विश्व रूप हो, विश्वबीज और सनातन हो ॥११३॥ तुम्हीं कार्य रूप हो, तुम्हीं कारण रूप हो, कारणों के कारण हो, तेजःस्वरूप, भगवान्, निर्विकार, निराश्रय, निर्लिप्त, निर्गुण, साक्षी, अपने आत्मा में रमण करने वाले, परात्पर, प्रकृति के अधीश्वर, विराट्-कारण और तुम्हीं विराट्रूप हो, तुम कला द्वारा सृष्टि रचना के लिए प्राकृतिक एवं सगुण हो। तुम्हीं प्रकृति हो, तुम्हीं पुरुष हो, क्योंकि तुम से अन्य कहीं कुछ है ही नहीं। तुम्हीं जीव, साक्षी के भोगी, अपने आत्मा के प्रतिबिम्ब, कर्म और कर्म के बीज तथा कर्मों के फल प्रदान करने वाले हो। योगी गण तुम्हारे अशरीरी तेज का ध्यान करते हैं। कुछ लोग चतुर्भुजधारी भगवान् विष्णु का ध्यान करते हैं, जो शान्त, लक्ष्मी के कान्त और मनोहर हैं। वैष्णव लोग उसी साकार, कमनीय (सुन्दर), मनोहर तथा शंख, चक्र, गदा, पद्म और पीताम्बर धारी परमदेव की उपासना करते हैं ॥११४-११९॥ दो भुजाओं से सुशोभित, कमनीय, किशोर, श्यामसुन्दर, शान्त, गोपिकाओं के कान्त, रत्नों के भूषणों से विभूषित एवं तेजस्वी की भक्तगण हर्ष से निरन्तर सेवा करते हैं। और योगी लोग जिसका ध्यान करते हैं वह तेजस्वी आपके अतिरिक्त दूसरा कौन हो सकता है? ॥१२०-१२१॥ हे देव! उसी (आपके) तेज को धारण करने वाले देवोंके तेज द्वारा मैं पूर्वकाल में असुरों के वधार्थ ब्रह्मा के स्तुति करने पर आविर्भूत हुई थी। हे विभो! मैं नित्य एवं तेजःस्वरूप हूँ, उस समय मैं शरीर धारण करके रमणीय रमणी रूप बनाकर वहाँ उपस्थित हुई ॥१२२-१२३॥ अनन्तर तुम्हारी माया स्वरूपा मैंने उन असुरों को माया द्वारा मोहित करके मार डाला और फिर हिमालय पर चली गई ॥१२४॥

---

१. कामं°।

ततोऽहं संस्तुता देवैस्तारकाक्षेण पीडितैः। अभवं दक्षजायायां शिवस्त्री पूर्वजन्मनि ॥१२५॥
त्यक्त्वा देहं दक्षयज्ञे शिवाऽहं शिवनिन्दया। अभवं शैलजायायां [1]शैलाधीशस्य कर्मणा ॥१२६॥
अनेकतपसा प्राप्तः शिवश्चात्रापि जन्मनि। पाणिं जग्राह मे योगी प्रार्थितो ब्रह्मणा विभुः ॥१२७॥
शृङ्गारजं च तत्तेजो नालभं देवमायया। स्तौमि त्वामेव तेनेश पुत्रदुःखेन दुःखिता ॥१२८॥
व्रते भवद्विधं पुत्रं लब्धुमिच्छामि सांप्रतम्। देवेन विहिता वेदे साङ्गे स्वस्वामिदक्षिणा ॥१२९॥
श्रुत्वा सर्वं कृपासिन्धो कृपां मे कर्तुमर्हसि। इत्युक्त्वा पार्वती तत्र विरराम च नारद ॥१३०॥
भारते पार्वतीस्तोत्रं यः शृणोति सुसंयतः। सत्पुत्रं लभते नूनं विष्णुतुल्यपराक्रमम् ॥१३१॥
संवत्सरं हविष्याशी हरिमभ्यर्च्य भक्तितः। सुपुण्यकव्रतफलं लभते नात्र संशयः ॥१३२॥
कृष्णस्तोत्रमिदं ब्रह्मन्सर्वसंपत्तिवर्धनम्। सुखदं मोक्षदं सारं स्वामिसौभाग्यवर्धनम् ॥१३३॥
सर्वसौन्दर्यबीजं च यशोराशिविवर्धनम्। हरिभक्तिप्रदं तत्त्वज्ञानबुद्धिसुखप्रदम् ॥ ॥१३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० पुण्यकव्रते पतिदाने पार्वतीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

पश्चात् तारकासुर से पीड़ित होने पर देवों ने स्तुति की जिससे मैं पूर्व जन्म में दक्ष की पत्नी में जन्म ग्रहण कर शिव की पत्नी हुई ॥१२५॥ मैं शिवा हूँ अतः दक्ष के यज्ञ में शिव-निन्दा के कारण देह त्यागकर पर्वतराज हिमालय के कर्मवश उनकी पत्नी मेना से प्रकट हुई ॥१२६॥ इस जन्म में भी विप्र एवं योगी शिव ने, अनेक तपस्याएँ करने तथा ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर मेरा पाणिग्रहण किया ॥१२७॥ किन्तु हे ईश! (शिव के साथ विहार करते समय) देव माया से वञ्चित होने के नाते उनके शृंगार जन्य तेज (वीर्य) को प्राप्त न कर सकी। इसी कारण पुत्र-दुःख से दुःखी होकर मैं आप की स्तुति कर रही हूँ ॥१२८॥ इस व्रत में मैं सम्प्रति आप के समान पुत्र प्राप्त करना चाहती हूँ और देवों ने सांग वेद में अपने स्वामी की ही दक्षिणा निरूपित की ॥१२९॥ अतः हे कृपासिन्धो! आप सब कुछ सुनकर मेरे ऊपर कृपा करें। हे नारद! इतना कह कर पार्वती चुप हो गयीं ॥१३०॥ भारत में पार्वती द्वारा किये गये इस स्तोत्र को जो सुसंयत होकर श्रवण करेगा, उसे विष्णु के समान पराक्रमी सत्पुत्र की अवश्य प्राप्ति होगी ॥१३१॥ पूरे वर्ष भर हविष्य का भोजन और भक्तिपूर्वक भगवान् की अर्चना करने पर वह मनुष्य इस सुपुण्यक व्रत का फल अवश्य प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं ॥१३२॥ हे ब्रह्मन्! कृष्ण का यह स्तोत्र, समस्त सम्पत्तियों का वर्द्धक, सुख और मोक्ष का दायक, सार रूप, स्वामी का सौभाग्यवर्द्धक, समस्त सौन्दर्य का कारण, कीर्ति-राशि की वृद्धि करने वाला, हरिभक्ति तत्त्वज्ञान बुद्धि एवं सुख देने वाला भी है ॥१३३-१३४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपति खण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत पुण्यक व्रत के प्रसङ्ग में पतिदान के अवसर पर पार्वती कृत श्रीकृष्ण-स्तोत्र कथन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ॥७॥

१क. शैलजा च स्वक०।

अथाष्टमोऽध्यायः

नारायण उवाच

पार्वत्याः स्तवनं श्रुत्वा श्रीकृष्णः करुणानिधिः। स्वरूपं दर्शयामास सर्वादृश्यं सुदुर्लभम् ॥१॥
स्तुत्वा देवी ध्यानपरा कृष्णसंलग्नमानसा। ददर्श तेजसां मध्ये स्वरूपं सर्वमोहनम् ॥२॥
सद्रत्नसाररचिते हीरकेण परिष्कृते। युक्ते माणिक्यमालाभी रत्नपूर्णे मनोरमे ॥३॥
पीतांशुकं वह्निशुद्धं वरं वंशकरं परम्। वनमालागलं श्यामं रत्नभूषणभूषितम् ॥४॥
किशोरवयसं चित्रवेषं वै चन्दनाङ्कितम्। चारुस्मितास्यमीड्यं तच्छारदेन्दुविनिन्दकम् ॥५॥
मालतीमाल्यसंयुक्तं केकिपिच्छावचूडकम्। गोपाङ्गनापरिवृतं राधावक्षःस्थलोज्ज्वलम् ॥६॥
कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम्। अतीव हृष्टं सर्वेष्टं भक्तानुग्रहकारकम् ॥७॥
दृष्ट्वा रूपं रूपवती पुत्रं तदनुरूपकम्। मनसा वरयामास वरं संप्राप्य तत्क्षणम् ॥८॥
वरं दत्त्वा वरेशस्तु यद्यन्मनसि वाञ्छितम्। दत्त्वाऽभीष्टं सुरेभ्यश्च तत्तेजोऽन्तरधीयत ॥९॥
कुमारं बोधयित्वा तु देवा देव्यै दिगम्बरम्। ददुर्निरुपमं तत्र प्रहृष्टायै कृपान्विताः ॥१०॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ दुर्गा रत्नानि विविधानि च। सुवर्णानि च भिक्षुभ्यो बन्दिभ्यो विश्ववन्दिता ॥११॥

अध्याय ८

गणेशजन्म का वर्णन

नारायण बोले—पार्वती की ऐसी स्तुति सुनकर करुणानिधान भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने स्वरूप का दर्शन दिया, जो सबके लिए अदृश्य और अति दुर्लभ है ॥१॥ श्रीकृष्ण में अपना चित्त लगाये हुई ध्यानपरायण देवी (पार्वती) ने तेज के मध्य सब को मोहित करनेवाला स्वरूप देखा, जो उत्तम रत्न के सार भाग से रचित और हीरे जड़े हुए, रत्नपूर्ण, मनोरम, माणिक्य-माला से सुशोभित, अग्नि-विशुद्ध पीताम्बर धारण किये, उत्तम, परम वंश कारक, गले में वनमाला से भूषित, श्यामल, रत्नों के भूषणों से सुशोभित, किशोरावस्था वाला, विचित्रवेष, चन्दन-चर्चित, सुन्दर मन्द मुसुकान युक्त मुख, जिससे शारदीय चन्द्रमा तिरस्कृत हो रहा था, मालती माला पहने, (मुकुट में) मोरपंख की चूडा बनाये, गोपिकाओं से घिरे, राधा को वक्षःस्थल में लगाने से उज्ज्वल, करोड़ों काम के लावण्य की शोभा का धाम, मनोहर, अतिहर्षित, सभी के अभीष्ट और भक्तों पर अनुग्रह करने वाला था ॥२-७॥ रूपवती पार्वती ने उस रूप को देख कर उन्हीं के अनुरूप पुत्र की अभिलाषा मन से प्रकट की और उसी क्षण उन्हें वरदान भी प्राप्त हो गया ॥८॥ वरेश भगवान् श्रीकृष्ण, जो तेजःस्वरूप थे, देवताओं का भी मनोरथ पूरा करके वहीं अन्तर्हित हो गये ॥९॥ सनत्कुमार को समझाकर कृपालु देवों ने अति हर्षित पार्वती को निरुपम शिव लौटा दिया। अनन्तर विश्ववन्दिता दुर्गा ने ब्राह्मणों को विविध-भाँति के रत्न तथा भिक्षुकों और वन्दियों को सुवर्ण प्रदान किया। ब्राह्मणों, देवों और पर्वतों को भोजन कराया तथा परमोत्तम उप-

ब्राह्मणान्भोजयामास देवान्वै पर्वतांस्तथा। शंकरं पूजयामास चोपहारैरनुत्तमैः ॥१२॥
दुन्दुभिं वादयामास कारयामास मङ्गलम्। संगीतं गाययामास हरिसंबन्धि सुन्दरम् ॥१३॥
व्रतं समाप्य सा दुर्गा दत्त्वा दानानि सस्मिता। सर्वांश्च भोजयित्वा तु बुभुजे स्वामिना सह ॥१४॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्। क्रमात्प्रदाय सर्वेभ्यो बुभुजे तेन कौतुकात् ॥१५॥
पयःफेननिभां शय्यां रम्यां सद्रत्नमञ्चके। पुष्पचन्दनसंयुतां कस्तूरीकुङ्कुमान्विताम्।
रहसि स्वामिना सार्धं सुष्वाप परमेश्वरी ॥१६॥
कैलासस्यैकदेशे च रम्ये चन्दनकानने। सुगन्धिकुसुमाढ्येन वायुना सुरभीकृते ॥१७॥
भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुताश्रये। व्यहार्षीत्सा सुरसिका तत्र तेन सहाम्बिका ॥१८॥
रेतःपतनकाले च स विष्णुर्विष्णुमायया। विधाय विप्ररूपं तदाजगाम रतेर्गृहम् ॥१९॥
जटावन्तं विना तैलं कुचैलं भिक्षुकं मुने। अतीव शुक्लदशनं तृष्णया परिपीडितम् ॥२०॥
अतीव कृशगात्रं च बिभ्रतिलकमुज्ज्वलम्। बहुकाकुस्वरं दीनं दैन्यात्कुत्सितमूर्तिमत् ॥२१॥
आजुहाव महादेवमतिवृद्धोऽन्नयाचकः। दण्डावलम्बनं कृत्वा रतिद्वारेऽतिदुर्बलः ॥२२॥

हारों द्वारा शंकर जी की पूजा की ॥१०-१२॥ नगाड़ा बजवाया, मंगल कराया एवं भगवत्सम्बन्धी सुन्दर संगीत गान कराया ॥१३॥ इस प्रकार व्रत समाप्त करके और दान देने के उपरान्त दुर्गा ने मन्द मुसकान करती हुई सबको भोजन कराया। अनन्तर स्वयं भी स्वामी शिव के साथ भोजन किया ॥१४॥ कपूर आदि से सुवासित एवं परम रम्य ताम्बूल क्रमशः सबको देकर उसी कौतुक से स्वयं भी खाया ॥१५॥ पश्चात् परमेश्वरी ने उत्तम रत्न के बने पलंग पर दूध के फेन के समान उज्ज्वल, रमणीक, पुष्प-चन्दन से युक्त और कस्तूरी-कुंकुम से समन्वित शय्या पर पति के साथ एकान्त में शयन किया ॥१६॥ फिर कैलाश के एक भाग में रमणीक चन्दनवन में, जो सुगन्धित पुष्पों से सम्पन्न वायु से सुगन्धित, भौरों की ध्वनियों से गुंजित और नर कोकिल के सुन्दर-वाणी बोलने का एकमात्र आश्रय था; सुरसिका अम्बिका शिव के साथ विहार करने लगीं ॥१७-१८॥ किन्तु वीर्य स्खलित होने के समय वे विष्णु विष्णुमाया के द्वारा ब्राह्मण का वेष बना कर उनके रतिगृह के द्वार पर आ पहुँचे ॥१९॥ हे मुने! उनका रूप भिक्षुक ब्राह्मण का था, जो बिना तेल के जटा भार लिये, फटे-पुराने वस्त्र एवं अत्यन्त शुक्ल दाँत वाले तथा तृष्णा (प्यास) से अति पीड़ित थे ॥२०॥ वे क्षीणकाय, अति उज्ज्वल तिलक धारी, शोकाकुल स्वर वाले और दैन्य से कुत्सित मूर्तिमान् लग रहे थे ॥२१॥ अन्न की याचना करने वाले एवं अति दुर्बल उस अतिवृद्ध ने डंडे के सहारे रतिगृह के दरवाजे पर पहुँच कर महादेव जी को बुलाया ॥२२॥

---

१ क. रत्ननिर्मिताम्।

ब्राह्मण उवाच

किं [1]करोषि महादेव रक्ष मां शरणागतम्। सप्तरात्रिव्रतेऽतीते पारणाकाङ्क्षिणं क्षुधा ॥२३॥
किं [2]करोषि महादेव हे तात करुणानिधे। पश्य वृद्धं जराग्रस्तं तृषया परिपीडितम् ॥२४॥
मातरुत्तिष्ठ मेऽन्नं त्वं प्रयच्छाद्य शिवं जलम्। अनन्तरत्नोद्भवजे रक्ष मां शरणागतम् ॥२५॥
मातर्मातर्जगन्मातरेहि नाहं जगद्बहिः। सीदामि तृषया कस्मात्स्थितायामात्ममातरि ॥२६॥
इति काकुस्वरं श्रुत्वा शिवस्योत्तिष्ठतो मुने। पपात वीर्यं शय्यायां न योनौ प्रकृतेस्तदा ॥२७॥
उत्तस्थौ पार्वती त्रस्ता सूक्ष्मवस्त्रं पिधाय च। आजगाम [3]बहिर्द्वारं पार्वत्या सह शंकरः ॥२८॥
ददर्श ब्राह्मणं दीनं जरया परिपीडितम्। वृद्धं लुलितगात्रं च बिभ्रतं दण्डमानतम् ॥२९॥
तपस्विनमशान्तं च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकम्। कुर्वन्तं परया भक्त्या प्रणामं स्तवनं तयोः ॥३०॥
श्रुत्वा तद्वचनं तत्र नीलकण्ठः सुधोपमम्। उवाच परया [4]प्रीत्या प्रसन्नस्तं प्रहस्य च ॥३१॥

शंकर उवाच

गृहं ते कुत्र विप्रर्षे वद वेदविदां वर। किं नाम भवतः क्षिप्रं ज्ञातुमिच्छामि सांप्रतम् ॥३२॥

पार्वत्युवाच

आगतोऽसि कुतो विप्र मम भाग्यादुपस्थितः। अद्य मे सफलं जन्म ब्राह्मणो मद्गृहेऽतिथिः ॥३३॥

ब्राह्मण बोले—हे महादेव! क्या कर रहे हो? मुझ शरणागत की रक्षा करो। मैं सात रात वाला व्रत करके क्षुधा से पीड़ित होकर भोजन करना चाहता हूँ ॥२३॥ हे महादेव, हे तात! हे करुणानिधे! क्या कर रहे हो? वृद्धावस्था से ग्रस्त एवं प्यास से अत्यन्त पीड़ित मुझ वृद्ध की ओर देखो ॥२४॥ हे मातः! उठो! तुम मुझे कल्याणप्रद जल और अन्न प्रदान करो। हे अनन्तरत्नों के उद्भव-स्थान हिमालय की पुत्री! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ, मेरी रक्षा करो ॥२५॥ हे मातः! हे मातः! हे जगन्मातः! आओ। मैं संसार से बाहर नहीं हूँ। अपनी माता के रहते हुए भी मैं तृष्णा से अति पीड़ित हो रहा हूँ ॥२६॥ हे मुने! इस प्रकार के शोकाकुल शब्द सुनने पर शिव के उठते समय उनका वीर्य शय्या पर ही गिर गया प्रकृति दुर्गा के गर्भ में नहीं ॥२७॥ अनन्तर त्रस्त होकर पार्वती भी सूक्ष्म वस्त्र पहन कर शंकर के साथ दरवाजे पर आयीं ॥२८॥ शिव ने ब्राह्मण को देखा, जो दीन, बुढ़ापे से दुःखी, वृद्ध, हिलती-डुलती देह वाला, तपस्वी, अशान्त, झुके दण्ड धारण करने वाला, सूखा कण्ठ, ओंठ एवं तालू वाला था और उन दोनों की परा भक्ति के साथ प्रणाम व स्तुति कर रहा था ॥२९-३०॥ नीलकंठ (शिव) ने उसकी अमृतोपम वाणी सुनकर बड़े प्रेम से हँसकर उससे कहा ॥३१॥

शंकर बोले—हे विप्रर्षे! हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! तुम्हारा घर कहां है? और आप का नाम क्या है, मैं शीघ्र जानना चाहता हूँ ॥३२॥

पार्वती बोलीं—हे विप्र! मेरे भाग्य से तुम यहाँ आये हो, कहाँ से आ रहे हो? आज मेरा जन्म सफल

---

१ क. ०रोमि। २ क. ०रोमि। ३ क. रतिद्वा०। ४ क. भक्त्या प्र०।

अतिथिः पूजितो येन त्रिजगत्तेन पूजितम्। तत्रैवाधिष्ठिता देवा ब्राह्मणा गुरवो द्विज ॥३४॥
तीर्थान्यतिथिपादेषु शश्वत्तिष्ठन्ति निश्चितम्। तत्पादधौततोयेन मिश्रितानि लभेद्गृही ॥३५॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। अतिथिः पूजितो येन स्वात्मशक्त्या यथोचितम् ॥३६॥
महादानानि सर्वाणि कृतानि तेन भूतले। अतिथिः पूजितो येन भारते भक्तिपूर्वकम् ॥३७॥
नानाप्रकारपुण्यानि वेदोक्तानि च यानि वै। तानि वैऽतिथिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३८॥
अपूजितोऽतिथिर्यस्य भवनाद्विनिवर्तते। पितृदेवाग्नयः पश्चाद्गुरवो यान्त्यपूजिताः ॥३९॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। तानि सर्वाणि[1] लभते नाभ्यर्च्यातिथिमीप्सितम् ॥४०॥

ब्राह्मण उवाच

जानासि वेदान्वेदज्ञे वेदोक्तं कुरु पूजनम्। क्षुत्तृड्भ्यां पीडितो मातर्वचनं च श्रुतौ श्रुतम् ॥४१॥
व्याधियुक्तो निराहारो यदा वाऽनशनव्रती। मनोरथेनोपहारं भोक्तुमिच्छति मानवः ॥४२॥

पार्वत्युवाच

भोक्तुमिच्छसि किं विप्र त्रैलोक्ये यत्सुदुर्लभम्। दास्यामि भोक्तुं त्वामद्य मज्जन्म सफलं कुरु ॥४३॥

हो गया। मेरे घर ब्राह्मण, अतिथि रूप में पधारे हैं ॥३३॥ हे द्विज! क्योंकि जिसने अतिथि की पूजा की, उसने तीनों लोकों की पूजा की। देव, ब्राह्मण और गुरु लोग वहीं निवास करते हैं ॥३४॥ अतिथि के चरणों में तीर्थगण निश्चित निवास करते हैं। गृहस्थ उनके चरण-प्रक्षालित जल मिश्रित तीर्थों को प्राप्त करता है ॥३५॥ अतः जिसने अपनी शक्ति के अनुसार अतिथि की यथोचित अर्चना की है वह समस्त तीर्थों में स्नान और समस्त यज्ञों में दीक्षित हो चुका ॥३६॥ वह पृथिवी पर सभी महादान कर चुका जिसने भारत में भक्तिपूर्वक अतिथि की पूजा की ॥३७॥ वेद में कहे हुए अनेक भाँति के जितने पुण्य हैं, वे और अन्य भी अतिथि-सेवा के सोलहवें भाग के समान भी नहीं हैं ॥३८॥ इसलिए अतिथि जिसके घर से बिना पूजित हुए चला जाता है, उसके पितर, देव, अग्नि और पश्चात् गुरु भी अपूजित ही रहकर चले जाते हैं ॥३९॥ अभीष्ट अतिथि का पूजन न करने पर ब्रह्महत्या आदि सभी पापों का भागी होना पड़ता है ॥४०॥

ब्राह्मण बोला—हे वेदज्ञे! तुम वेदों को जानती हो, अतः वेदानुसार पूजन करो। हे मातः! मैं क्षुधा और तृषा (प्यास) से अतिपीड़ित हो रहा हूँ। मैंने वेदों में यह सुना है कि—रोगी, भूखा और अनशन का व्रती मनुष्य मनचाहा भोजन करना चाहता है ॥४१-४२॥

पार्वती बोलीं—हे विप्र! तुम क्या खाना चाहते हो? तीनों लोकों में जो अति दुर्लभ हो, वही भोजन तुम्हें कराऊँगी, मेरा जन्म सुफल करो ॥४३॥

---

१ क. ०णि नश्यन्ते नाभ्यर्च्यातिथिपूजनात्।

ब्राह्मण उवाच

व्रते सुव्रतया सर्वमुपहारं समाहृतम्। नानाविधं मिष्टमिष्टं भोक्तुं श्रुत्वा समागतः ॥४४॥
सुव्रते तव पुत्रोऽहमग्रे मां पूजयिष्यसि। दत्त्वा मिष्टानि वस्तूनि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च ॥४५॥
ताताः पञ्चविधाः प्रोक्ता मातरो विविधाः स्मृताः। पुत्रः पञ्चविधः साध्वि कथितो वेदवादिभिः ॥४६॥
विद्यादाताऽन्नदाता च भयत्राता च जन्मदः। कन्यादाता च वेदोक्ता नराणां पितरः स्मृताः ॥४७॥
गुरुपत्नी गर्भधात्री स्तनदात्री पितुःस्वसा। स्वसा मातुः सपत्नी च पुत्रभार्याऽन्नदायिका ॥४८॥
भृत्यः शिष्यश्च पोष्यश्च वीर्यजः शरणागतः। धर्मपुत्राश्च चत्वारो वीर्यजो धनभागिति ॥४९॥
क्षुत्तृड्भ्यां पीडितो मातर्वृद्धोऽहं शरणागतः। सांप्रतं तव वन्ध्याया अनाथः पुत्र एव च ॥५०॥
पिष्टकं परमान्नं च सुपक्वानि फलानि च। नानाविधानि पिष्टानि कालदेशोद्भवानि च ॥५१॥
पक्वान्नं स्वस्तिकं क्षीरमिक्षुमिक्षुविकारजम्। घृतं दधि च शाल्यन्नं घृतपक्वं च व्यञ्जनम् ॥५२॥
लड्डुकानि तिलानां च मिष्टान्नैः सगुडानि च। ममाज्ञातानि वस्तूनि सुधया तुल्यकानि च ॥५३॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्। जलं सुनिर्मलं स्वादु द्रव्याण्येतानि वासितम् ॥५४॥
द्रव्याणि यानि भुक्त्वा मे चारु लम्बोदरं भवेत्। अनन्तरत्नोद्भवजे तानि मह्यं प्रदास्यसि ॥५५॥
स्वामी ते त्रिजगत्कर्ता प्रदाता सर्वसंपदाम्। महालक्ष्मीस्वरूपा त्वं सर्वैश्वर्यप्रदायिनी ॥५६॥

ब्राह्मण बोला—हे सुव्रते ! मैंने सुना है कि—इस व्रत में उत्तम व्रत वाली आपने सभी प्रकार का भोजन एकत्रित किया है, अतः अनेक भाँति के मिष्टान्न भोजन करने आया हूँ ॥४४॥ हे सुव्रते ! मैं तुम्हारा पुत्र हूँ, तीनों लोकों में अतिदुर्लभ मिष्ठान्न देकर सर्वप्रथम मेरा पूजन करो ॥४५॥ हे साध्वि ! पिता पाँच प्रकार के बताये गये हैं, मातायें अनेक होती हैं और पुत्र पाँच प्रकार के होते हैं, वेदवादियों ने ऐसा कहा है ॥४६॥ विद्या देने वाला, अन्न-दाता, भय-रक्षक, जन्मदाता, और कन्यादाता, वेदानुसार मनुष्यों के ये पाँच प्रकार के पिता होते हैं ॥४७॥ गुरुपत्नी, गर्भ में धारण करने वाली, स्तन पिलाने वाली, पिता की भगिनी, माता की भगिनी सपत्नी (सौतेली मां) पुत्र की स्त्री, और भोजन देने वाली मनुष्यों की मातायें होती हैं ॥४८॥ सेवक, शिष्य, पोष्य अपने वीर्य से उत्पन्न और शरणागत ये पाँच पुत्र कहलाते हैं, जिनमें चार धर्मपुत्र कहलाते हैं और अपने वीर्य से उत्पन्न होने वाला पुत्र धन का भागी होता है ॥४९॥ हे मातः ! मैं क्षुधा-तृषा से पीड़ित, वृद्ध और तुम्हारा शरणागत हूँ, इस समय तुम वन्ध्या का अनाथ पुत्र हूँ ॥५०॥ पूड़ी, खीर, पके फल, आटे के बने हुए नाना प्रकार के पदार्थ, कालदेशानुसार उत्पन्न हुई वस्तुएँ, पक्वान्न, स्वस्तिक, दूध, ऊख के रस और उससे बने पदार्थ, घृत, दही, साठी चावल का भात, घृतपक्व व्यञ्जन, तिलों के लड्डू, गुड़ों के मिष्टान्न, और जिन्हें मैं नहीं जानता, वे अमृतोपम वस्तुएँ भी तथा कर्पूरादि से सुवासित उत्तम रम्य ताम्बूल, निर्मल एवं सुस्वादु जल तथा हे शैलेजे !, मुझे ये सभी वस्तुएँ और अन्य वस्तुएँ भी प्रदान करो, जिन्हें खाकर मैं सुन्दर लम्बोदर हो जाऊँ ॥५१–५५॥तुम्हारा स्वामी तीनों लोकों का कर्ता और समस्त सम्पत्ति का प्रदाता है और तुम समस्त ऐश्वर्य प्रदान करने वाली महालक्ष्मी हो ॥५६॥ रमणीय रत्नसिंहासन, अमूल्य रत्नों के भूषण, अतिदुर्लभ अग्नि-

रत्नसिंहासनं रम्यममूल्यं रत्नभूषणम्। वह्निशुद्धांशुकं चारु प्रदास्यसि सुदुर्लभम्॥५७॥
सुदुर्लभं हरेर्मन्त्रं हरौ भक्तिं दृढां सति। हरिप्रिया हरेः शक्तिस्त्वमेव सर्वदा स्थिता॥५८॥
ज्ञानं मृत्युंजयं नाम दातृशक्तिं सुखप्रदाम्। सर्वसिद्धिं च किं मातरदेयं स्वसुताय च॥५९॥
मनः सुनिर्मलं कृत्वा धर्मे तपसि संततम्। श्रेष्ठे सर्वं करिष्यामि न कामे जन्महेतुके॥६०॥
स्वकामात्कुरुते कर्म कर्मणो भोग एव च। भोगौ शुभाशुभौ ज्ञेयौ तौ हेतू सुखदुःखयोः॥६१॥
दुःखं न कस्माद्भवति सुखं वा जगदम्बिके। सर्वं स्वकर्मणो भोगस्तेन तद्विरतो बुधः॥६२॥
कर्म निर्मूलयन्त्येव सन्तो हि सततं मुदा। हरिभावनबुद्ध्या तत्तपसा भक्तसङ्गतः॥६३॥
इन्द्रियद्रव्यसंयोगसुखं विध्वंसनावधि। हरिसंलापरूपं च सुखं तत्सार्वकालिकम्॥६४॥
हरिस्मरणशीलानां नाऽऽयुर्याति सतां सति। न तेषामीश्वरः कालो न च मृत्युंजयो ध्रुवम्॥६५॥
चिरं जीवन्ति ते भक्ता भारते चिरजीविनः। सर्वसिद्धिं च विज्ञाय स्वच्छन्दं सर्वगामिनः॥६६॥
जातिस्मरा हरेर्भक्ता जानते कोटिजन्मनः। कथयन्ति कथां जन्म लभन्ते स्वेच्छया मुदा॥६७॥
परं पुनन्ति ते पूतास्तीर्थानि स्वीयलीलया। पुण्यक्षेत्रेऽत्र सेवायै परार्थं च भ्रमन्ति ते॥६८॥
वैष्णवानां पदस्पर्शात्सद्यः पूता वसुंधरा। कालं गोदोहमात्रं तु तीर्थे यत्र वसन्ति ते॥६९॥
गुरोरास्याद्विष्णुमन्त्रः श्रुतौ यस्य प्रविश्यति। तं वैष्णवं तीर्थपूतं प्रवदन्ति पुराविदः॥७०॥

विशुद्ध वस्त्र, अति दुर्लभ भगवान् का मंत्र और हरि की दृढ़भक्ति देने की कृपा करो, क्योंकि तुम भगवान् की प्रिया और उनकी शक्ति होकर सदा स्थित रहती हो॥५७-५८॥ मृत्युञ्जयज्ञान, सुख देने वाली दातृशक्ति तथा सब सिद्धियाँ दो और, हे माता !, अपने पुत्र के लिए क्या अदेय है ? हे श्रेष्ठे ! धर्म एवं तप में अपने मन को अतिस्वच्छ करके मैं सब कुछ करूँगा, परन्तु जन्म देनेवाली कामनाओं के वश में नहीं होऊँगा ॥५९-६०॥ अपनी कामना के अनुसार कर्म किया जाता है और कर्मफल भोग किया जाता है और भोग शुभ अशुभ (भला-बुरा) दो प्रकार के होते हैं, जो सुख और दुःख के हेतु हैं ॥६१॥ हे जगदम्बिके ! न किसी से दुःख होता है और न किसी से सुख, अपने कर्मों का सब भोग है। इसीलिए पण्डित उससे (कामना से) विरत (उदासीन) रहते हैं॥६२॥ भगवान् में प्रेम करने वाली बुद्धि, तप और भक्तों के संसर्ग से सन्त महात्मा निरन्तर प्रसन्नचित्त होकर कर्म का निर्मूलन ही करते रहते हैं॥६३॥ क्योंकि इन्द्रियों और उनके विषयों के संयोग से उत्पन्न सुख नश्वर होता है और भगवान् के कीर्तन रूप सुख सभी कालों में विद्यमान रहता है॥६४॥ हे सती ! भगवान् का भजन करने वाले सज्जनों की आयु नष्ट नहीं होती है। काल उन पर अधिकार नहीं कर सकता है और न मृत्युञ्जय ही कर सकते हैं॥६५॥ भारत में वे भक्तलोग चिरजीवी होते हैं और समस्त सिद्धि प्राप्त कर वे स्वतंत्रतापूर्वक सब स्थानों में आते-जाते हैं ॥६६॥ भगवान् के भक्तों को पिछले जन्मों का स्मरण बना रहता है, इसीलिए वे करोड़ों जन्मों की बातें जानते हैं, उनकी कथा कहते रहते हैं और प्रसन्नतापूर्वक स्वेच्छया जन्म ग्रहण करते हैं॥६७॥ वे अति पुनीत होते हैं और अपनी लीला से तीर्थों को पवित्र करते हैं। इस पुण्य क्षेत्र में वे दूसरे की सेवा के लिए भ्रमण किया करते हैं॥६८॥ जिस तीर्थ में वैष्णवगण गोदोहन काल तक ठहर जाते हैं उनके चरण-स्पर्श होने से यह पृथ्वी तुरन्त पवित्र हो जाती है॥६९॥ क्योंकि गुरु के मुख

पुरुषाणां शतं पूर्वमुद्धरन्ति शतं परम्। लीलया भारते भक्त्या सोदरान्मातरं तथा॥७१॥
मातामहानां पुरुषान्दश पूर्वान्दशापरान्। मातुः प्रसूमुद्धरन्ति दारुणाद्यमताडनात्॥७२॥
भक्तदर्शनमाश्लेषं मानवाः प्राप्नुवन्ति ये। ते स्नाताः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षिताः॥७३॥
न लिप्ताः पातकैर्भक्ताः संततं हरिमानसाः। यथाऽग्नयः सर्वभक्ष्या यथा द्रव्येषु वायवः॥७४॥
त्रिकोटिजन्मनामन्ते प्राप्नोति जन्म मानवम्। प्राप्नोति भक्तसङ्गं स मानुषे कोटिजन्मतः॥७५॥
भक्तसङ्गाङ्कुरो जीविनः सति। अभक्तदर्शनादेव स च प्राप्नोति शुष्कताम्॥७६॥
पुनः प्रफुल्लतां याति वैष्णवालापमात्रतः। अङ्कुरश्चाविनाशी च वर्धते प्रतिजन्मनि॥७७॥
तत्तरोर्वर्धमानस्य हरिदास्यं फलं सति। परिणामे भक्तिपाके पार्षदश्च भवेद्धरेः॥७८॥
महति प्रलये नाशो न भवेत्तस्य निश्चितम्। सर्वसृष्टेश्च संहारे ब्रह्मलोकस्य वेधसः॥७९॥
तस्मान्नारायणे भक्तिं देहि मामम्बिके सदा। न भवेद्विष्णुभक्तिश्च विष्णुमाये त्वया विना॥८०॥
तद्व्रतं लोकशिक्षार्थं तत्तपस्तव पूजनम्। सर्वेषां फलदात्री त्वं नित्यरूपा सनातनी॥८१॥
गणेशरूपः श्रीकृष्णः कल्पे कल्पे तवाऽऽमजः। त्वत्क्रोडमागतः क्षिप्रमित्युक्त्वाऽन्तरधीयत॥८२॥

से भगवान् विष्णु का मन्त्र जिसके कर्ण-विवर में प्रविष्ट होता है, उसे पुरावेत्ताओं ने तीर्थ के समान पवित्र वैष्णव कहा है॥७०॥ भारत में भक्त लोग अपने पूर्वजों की सौ पीढ़ियों और भावी सौ पीढ़ियों का उद्धार अनायास करते हैं, उसी भाँति सोदर भ्राता, माता तथा मातामह (नाना) कुल की पूर्व और पर की दश-दश पीढ़ियों समेत नानी का भीषण यमताड़न से उद्धार करते हैं॥७१-७२॥ जो मानव भक्त का दर्शन और आलिंगन करते हैं वे मानो समस्त तीर्थों की यात्रा और सभी यज्ञों में दीक्षित हो चुके॥७३॥ हरि का निरन्तर ध्यान करने वाले भक्त कभी पातकों से लिप्त नहीं होते हैं जैसे सर्वभक्षी अग्नि और द्रव्यों (पृथिवी, जल, तेज आदि) में वायु किसी से लिप्त नहीं होते॥७४॥ तीन करोड़ जन्मों के पश्चात् मानव-जन्म प्राप्त होता है और करोड़ों जन्मों में मानव को भक्तों का सत्संग मिलता है॥७५॥ हे सती! भक्तों के सत्संग से भक्ति का अंकुर उत्पन्न होता है, जो अभक्तों के दर्शन से सूख जाता है॥७६॥ पर पुनः वह वैष्णवों के साथ वार्तालाप होने पर प्रफुल्लित हो जाता है क्योंकि वह अंकुर अनश्वर होता है और प्रत्येक जन्म में वृद्धि प्राप्त करता है॥७७॥ हे सती! उस वृक्ष के बड़े होने पर उसमें भगवान् का दास्य रूप फल लगता है और परिणाम में भक्ति के पकने (दृढ़ होने) पर वह भगवान् का पार्षद हो जाता है॥७८॥ फिर महान् प्रलय में भी जबकि ब्रह्मा समेत ब्रह्मलोक आदि समस्त सृष्टि का संहार हो जाता है, उसका नाश नहीं होता है, यह सुनिश्चित है॥७९॥ हे अम्बिके! इसलिए हमें भगवान् की भक्ति सदा देने की कृपा करो। हे विष्णुमाये! बिना तुम्हारी कृपा के भगवान् की भक्ति नहीं होती है॥८०॥ तुम्हारा अपना व्रत, अपना तप और पूजन करना लोक शिक्षार्थ होता है, क्योंकि तुम सभी लोगों को फल प्रदान करने वाली, नित्यरूपा और सनातनी हो॥८१॥प्रत्येक कल्प में भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे गणेश रूप पुत्र होते हैं और वे शीघ्र ही (पुत्र बनकर) तुम्हारी गोद में आ रहे हैं, यह कह कर ब्राह्मण अन्तर्हित हो गया॥८२॥

कृत्वाऽन्तर्धानमीशश्च बालरूपं विधाय सः। जगाम पार्वतीतल्पं मन्दिराभ्यन्तरस्थितम् ॥८३॥
तल्पस्थे शिववीर्ये च मिश्रितः स बभूव ह। ददर्श गेहशिखरं प्रसूते बालके यथा ॥८४॥
शुद्धचम्पकवर्णाभः कोटिचन्द्रसमप्रभः। सुखदृश्यः सर्वजनैश्चक्षूरश्मिविवर्धकः ॥८५॥
अतीव सुन्दरतनुः कामदेवविमोहनः। मुखं निरुपमं बिभ्रच्छारदेन्दुविनिन्दकम् ॥८६॥
सुन्दरे लोचने बिभ्रच्चारुपद्मविनिन्दके। ओष्ठाधरपुटं बिभ्रत्पक्वबिम्बविनिन्दकम् ॥८७॥
कपालं च कपोलं च परमं सुमनोहरम्। नासाग्रं रुचिरं बिभ्रद्खगेन्द्रचञ्चुविनिन्दकम् ॥८८॥
त्रैलोक्ये वै निरुपमं सर्वाङ्गं बिभ्रदुत्तमम्। शयानः शयने रम्ये प्रेरयन्हस्तपादकम् ॥८९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० गणेशोत्पत्तिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरौ तिरोहिते शर्वाणी दुर्गा शंकरस्तदा। ब्राह्मणान्वेषणं कृत्वा बभ्राम परितो मुने ॥१॥

पार्वत्युवाच

अये विप्रेन्द्रातिवृद्ध क्व गतोऽसि क्षुधातुरः। हे तात दर्शनं देहि प्राणान्वै रक्ष मे विभो ॥२॥

इतना कहकर वे अन्तर्हित हो गये ॥८२॥ भगवान् ने अन्तर्धान होकर अपना बाल रूप बनाया और मन्दिर के भीतर स्थित पार्वती की शय्या पर शिव के वीर्य में मिश्रित हो गये और प्रसूत बालक की भाँति ऊपर मन्दिर-कलश की ओर देखने लगे ॥८३-८४॥ वे शुद्ध चम्पा के समान वर्ण वाले, करोड़ों चन्द्रमा की भाँति कान्ति वाले, सभी लोगों के देखने में सुखप्रद और नेत्र-ज्योति के वर्द्धक, अत्यन्त सुन्दर शरीर वाले, काम को भी मोहित करने वाले तथा शारदीय चन्द्रमा से भी श्रेष्ठ मुख वाले थे। उनके, रम्य कमल को निन्दित करने वाले युगलनयन, पके बिम्बाफल को तिरस्कृत करने वाला अधरबिम्ब, परम मनोहर कपोल और कपाल तथा तोते की चोंच को तिरस्कृत करने वाली नाक थी। इस भाँति निरुपम समस्त अंगों को धारण किये वे सुन्दर शय्या पर पड़े-पड़े अपने हाथों और पैरों को चला रहे थे ॥८६-८९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में गणेशोत्पत्ति-वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ॥८॥

अध्याय ९

बाल गणेश का दर्शन

नारायण बोले—हे मुने! भगवान् के अन्तर्हित होने पर पार्वती दुर्गा और शंकर ने ब्राह्मण की खोज में चारों ओर भ्रमण करना आरम्भ किया ॥१॥

पार्वती बोलीं—हे अतिवृद्ध विप्रेन्द्र! तुम बहुत भूखे थे, कहाँ चले गये हो? हे तात! हे विभो! मुझे दर्शन देकर मेरे प्राणों की रक्षा करो ॥२॥ हे शिव! शीघ्र उठो और ब्राह्मण की खोज करो। क्षण मात्र ही

शिव शीघ्र समुत्तिष्ठ ब्राह्मणान्वेषणं कुरु। क्षणमुन्मनसोरेष गतः प्रत्यक्षमावयोः ॥३॥
अगृहीत्वा गृहात्पूजां गृहिणोऽतिथिरीश्वरः। यदि याति क्षुधार्तश्च तस्य किं जीवनं वृथा ॥४॥
पितरस्तन्न गृह्णन्ति पिण्डदानं च तर्पणम्। तस्याऽऽहुतिं न गृह्णाति वह्निः पुष्पं जलं सुराः ॥५॥
हव्यं पुष्पं जलं द्रव्यमशुचेश्च सुरासमम्। अमेध्यसदृशः पिण्डः स्पर्शनं पुण्यनाशनम् ॥६॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी। कैवल्ययुक्ता सा दुर्गा तां शुश्राव शुचाऽऽतुरा ॥७॥
शान्ता भव जगन्मातः स्वसुतं पश्य मन्दिरे। कृष्णं गोलोकनाथं तं परिपूर्णतमं परम् ॥८॥
सुपुण्यकव्रततरोः फलरूपं सनातनम्। यत्तेजो योगिनः शश्वद्ध्यायन्ति संततं मुदा ॥९॥
ध्यायन्ति वैष्णवा देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः। यस्य पूज्यस्य सर्वाग्रे कल्पे कल्पे च पूजनम् ॥१०॥
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नो विनश्यति। पुण्यराशिस्वरूपं च स्वसुतं पश्य मन्दिरे ॥११॥
कल्पे कल्पे ध्यायसि यं ज्योतीरूपं सनातनम्। पश्य त्वं मुक्तिदं पुत्रं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१२॥
तव वाञ्छापूर्णबीजं तपःकल्पतरोः फलम्। सुन्दरं स्वसुतं पश्य कोटिकन्दर्पनिन्दकम् ॥१३॥
नायं विप्रः क्षुधार्तश्च विप्ररूपी जनार्दनः। किंवा विलापं कुरुषे क्व वा वृद्धः क्व चातिथिः ॥
सरस्वती त्वेवमुक्त्वा विरराम च नारद ॥१४॥
त्रस्ता श्रुत्वाऽऽकाशवाणीं जगाम स्वालयं सती। ददर्श बालं पर्यङ्के शयानं सस्मितं मुदा ॥१५॥

उन्मन रहते हुए दोनों के वे प्रत्यक्ष हुए थे ॥३॥ हे ईश्वर! किसी गृहस्थ के घर से बिना पूजा (सम्मान) ग्रहण किये अतिथि यदि भूखा और प्यासा चला जाता है, तो उस (गृहस्थ) का व्यर्थ जीवन किस काम का होता है ॥४॥ क्योंकि पितर लोग उसके हाथ का पिण्डदान और तर्पण, अग्नि उसकी दी हुई आहुति और देवगण उसके हाथ का पुष्प एवं जल नहीं ग्रहण करते हैं ॥५॥ उसका हव्य, पुष्प, जल और द्रव्य मद्य की भाँति अशुद्ध हो जाता है, पिण्ड अपवित्र की भाँति रहता है, और उसका स्पर्श करने से पुण्य-नाश होता है ॥६॥ इसी बीच आकाश वाणी हुई, जिसे कैवल्य (पद) युक्ता दुर्गा ने, जो शोकाकुल हो रही थीं, सुना ॥७॥ हे जगन्मातः! शान्त हो जाओ, भवन में जाकर अपने पुत्र का दर्शन करो, जो गोलोकनाथ, परिपूर्णतम परमोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण का स्वरूप है ॥८॥ वह सुपुण्यक नामक व्रत वृक्ष का सनातन फल रूप है, जिस के तेज का योगी लोग प्रसन्न चित्त से निरन्तर ध्यान करते रहते हैं ॥९॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि वैष्णव देवगण प्रत्येक कल्प में सभी देवों के पहले जिसकी पूजा करते हैं ॥१०॥ जिसके स्मरण मात्र से समस्त विघ्नों का नाश हो जाता है, पुण्य राशि स्वरूप उस अपने पुत्र को मन्दिर में जाकर देखो ॥११॥ प्रत्येक कल्प में तुम जिस सनातन ज्योतिरूप का ध्यान करती हो, उसी मुक्ति देने वाले पुत्र को देखो, जो भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण किये हुए हैं ॥१२॥ वह तुम्हारी अभिलाषा-पूर्ति का बीज एवं तपरूपी कल्पवृक्ष का फल है। अपने उस सुन्दर पुत्र को देखो, जो करोड़ों काम को विनिन्दित कर रहा है ॥१३॥ वह भूखा-प्यासा ब्राह्मण नहीं था, ब्राह्मण वेष में भगवान् जनार्दन थे। अतः क्यों विलाप कर रही हो? कहाँ वह वृद्ध रहा और कहाँ वह अतिथि है। हे नारद! इतना कहकर वह वाणी सरस्वती चुप हो गयीं ॥१४॥ भयभीत दुर्गा ने आकाशवाणी सुनकर अपने भवन में जाकर पलंग पर लेटे और मुसकराते हुए बालक को देखा ॥१५॥ वह गृह-कलश की ओर ताक रहा था,

पश्यन्तं गेहशिखरं शतचन्द्रसमप्रभम् । स्वप्रभापटलेनैव द्योतयन्तं महीतलम् ॥१६॥
कुर्वन्तं भ्रमणं तल्पे पश्यन्तं स्वेच्छया मुदा। उमेति शब्दं कुर्वन्तं रुदन्तं तं स्तनार्थिनम् ॥१७॥
दृष्ट्वा तदद्भुतं रूपं त्रस्ता शंकरसंनिधिम्। गत्वा सोवाच गिरिशं सर्वमङ्गलमङ्गला ॥१८॥

पार्वत्युवाच

गृहमागच्छ सर्वेश तपसां फलदायकम्। कल्पे कल्पे ध्यायसि यं तं पश्याऽऽगत्य मन्दिरे ॥१९॥
शीघ्रं पुत्रमुखं पश्य पुण्यबीजं महोत्सवम् । पुंनामनरकत्राणं कारणं भवतारणम् ॥२०॥
स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् । पुत्रसंदर्शनस्यास्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२१॥
सर्वदानेन यत्पुण्यं क्ष्माप्रदक्षिणतश्च यत्। पुत्रदर्शनपुण्यस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२२॥
सर्वैस्तपोभिर्यत्पुण्यं यदेवानशनैर्व्रतैः। सत्पुत्रोद्भवपुण्यस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२३॥
यद्विप्रभोजनैः पुण्यं यदेव सुरसेवनैः। सत्पुत्रप्राप्तिपुण्यस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२४॥
पार्वत्या वचनं श्रुत्वा शिवः संहृष्टमानसः। अजगाम स्वभवनं क्षिप्रं वै कान्तया सह ॥२५॥
ददर्श तल्पे स्वसुतं तप्तकाञ्चनसंनिभम्। हृदयस्थं च यद्रूपं तदेवातिमनोहरम् ॥२६॥
दुर्गा तल्पात्समादाय कृत्वा वक्षसि तं सुतम्। चुचुम्बाऽऽनन्दजलधौ निमग्ना सेत्युवाचतम् ॥२७॥

सैकड़ों चन्द्रमा के समान उसकी कान्ति थी और अपने कान्ति-समूह से पृथ्वीतल को प्रकाशित कर रहा था ॥१६॥ उस शय्या पर इधर-उधर लोट-पोट कर प्रसन्नचित्त से स्वेच्छया देख रहा था तथा दुग्ध-पान के लिए रोदन करते हुए उमा शब्द कह रहा था ॥१७॥ समस्त मंगलों का मंगल करने वाली गौरी बालक का ऐसा अद्भुत रूप देखकर तुरन्त शंकर के पास गयीं और कहने लगीं ॥१८॥

पार्वती बोलीं—हे सर्वेश! घर चलो और प्रत्येक कल्प में जिस तप-फल-दाता का नित्य ध्यान करते हो उसको मन्दिर में चल कर देखो ॥१९॥ शीघ्र पुत्र का मुख देखो, जो पुण्य का कारण, महान् उत्सव रूप, पुंनाम नरक से बचाने का एकमात्र कारण और संसार से तारने वाला है ॥२०॥ समस्त तीर्थों का स्नान, समस्त यज्ञों की दीक्षा ग्रहण करना इस पुत्रदर्शन की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है ॥२१॥ समस्त दान तथा समस्त पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, वह पुत्र-दर्शन-पुण्य की सोलहवीं कला के भी समान नहीं है ॥२२॥ समस्त तप और व्रतोपवास द्वारा जितने पुण्य की प्राप्ति होती है, वह उत्तम पुत्र के जन्म-पुण्य की सोलहवीं कला के भी समान नहीं होती है ॥२३॥ ब्राह्मण-भोजन और देवों की सेवा द्वारा जो पुण्य प्राप्त होता है वह उत्तम पुत्र की प्राप्तिरूप पुण्य की सोलहवीं कला के समान नहीं होता है ॥२४॥ पार्वती की बातें सुनकर शंकर का चित्त अति प्रसन्न हो गया, अनन्तर अपनी कान्ता के साथ शीघ्र वे अपने भवन में आये और शय्या पर तपाये सुवर्ण की भाँति गौरवर्ण अपने पुत्र को देखा, जो हृदयस्थित रूप से भी अति मनोहर था। ॥२५-२६॥ दुर्गा ने शय्या से पुत्र को उठाकर अपनी गोद में ले लिया और आनन्द-सागर में निमग्न होकर उसका चुम्बन किया, अनन्तर उससे कहा—

संप्राप्तामूल्यरत्नं त्वां पूर्णमेव सनातनम्। यथा मनो दरिद्रस्य सहसा प्राप्य सद्धनम् ॥२८॥
कान्ते सुचिरमायाते प्रोषिते योषितो यथा। मानसं परिपूर्णं च बभूव च तथा मम ॥२९॥
सुचिरं गतमायान्तमेकपुत्रा यथा सुतम्। दृष्ट्वा तुष्टा यथा वत्स तथाऽहमपि सांप्रतम् ॥३०॥
सद्रत्नं सुचिरं भ्रष्टं प्राप्य हृष्टो यथा जनः। अनावृष्टौ सुवृष्टिं च संप्राप्याहं तथा सुतम् ॥३१॥
यथा सुचिरमन्धानां स्थितानां च निराश्रये। चक्षुः सुनिर्मलं प्राप्य मनः पूर्णं तथैव मे ॥३२॥
दुस्तरे सागरे घोरे पतितस्य च संकटे। अनौकस्य प्राप्य नौकां मनः पूर्णं तथा मम ॥३३॥
तृष्णया शुष्ककण्ठानां सुचिराच्च सुशीतलम्। सुवासितं जलं प्राप्य मनः पूर्णं तथा मम ॥३४॥
दावाग्निपतितानां च स्थितानां च निराश्रये। निरग्निमाश्रयं प्राप्य मनः पूर्णं तथा मम ॥३५॥
चिरं बुभुक्षितानां च व्रतोपोषणकारिणाम्। सदन्नं पुरतो दृष्ट्वा मनः० ॥३६॥
इत्युक्त्वा पार्वती तत्र क्रोडे कृत्वा स्वबालकम्। प्रीत्या स्तनं ददौ तस्मै परमानन्दमानसा ॥३७॥
क्रोडे चकार भगवान्बालकं हृष्टमानसः। चुचुम्ब गण्डे वेदोक्तं युयुजे चाऽऽशिषं मुदा ॥३८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० बालगणेशदर्शनं
नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

जिस प्रकार दरिद्र का मन सहसा उत्तम धन प्राप्त करके प्रफुल्लित होता है, उसी भाँति मैंने अमूल्य रत्न के रूप में तुम्हें प्राप्त किया है, तुम्हीं पूर्ण सनातन हो ॥२७-२८॥ जिस प्रकार चिरकाल तक परदेश में रहकर आये हुए पति को पाकर स्त्री का मन आनन्द से भर जाता है, उसी प्रकार मेरा मन भी आनन्द से परिपूर्ण हो रहा है ॥२९॥ जिस प्रकार एक पुत्र वाली स्त्री चिरकाल से गये हुए अपने पुत्र के आने पर उसे देखकर सन्तुष्ट हो जाती है उसी प्रकार इस समय मैं भी सन्तुष्ट हो रही हूँ ॥३०॥ चिरकाल का खोया हुआ उत्तमरत्न पाकर और अनावृष्टि के बाद सुवृष्टि होने पर मनुष्य जैसे हर्षित होता है, वैसे ही पुत्र पाकर मैं हर्षित हो रही हूँ ॥३१॥ चिरकाल के आश्रयहीन अन्धे को निर्मल नेत्र प्राप्त होने की भाँति मेरा मन पूर्ण प्रसन्न हो गया है ॥३२॥ घोर दुस्तर सागर में गिरे हुए नौकाहीन पुरुष को संकटकाल में तुरन्त नौका मिल जाने की भाँति मेरा मन पूर्ण प्रसन्न हो गया है ॥३३॥ प्यास से चिरकाल से सूखे हुए कण्ठ वाले मनुष्य को अतिशीतल और सुवासित जल प्राप्त होने पर जिस प्रकार उसका मन पूर्ण प्रसन्न हो जाता है उसी प्रकार मेरा मन प्रसन्न हो रहा है ॥३४॥ दावाग्नि में पड़े हुए आश्रयहीन पुरुष को अग्निरहित उत्तम स्थान प्राप्त होने पर जैसे उसका मन पूर्ण आनन्दमग्न हो जाता है वैसे ही मेरा मन आनन्दमग्न हो रहा है ॥३५॥ व्रत में उपवास करने वाले पुरुष को, जो चिरकाल से अति क्षुधापीड़ित हो रहा हो, सामने उत्तम भोजन देखकर जिस प्रकार आनन्द होता है उसी भाँति मेरा मन आनन्द से पूर्ण है ॥३६॥ इतना कहकर पार्वती ने अपने बच्चे को गोदी में रखकर परमानन्दमग्न चित्त से उसे स्तनपान कराया। अनन्तर शिव ने भी उसे गोद में रखकर अतिप्रसन्नता से उसका कपोल चुम्बन किया और वेदोक्त आशीर्वाद प्रदान किया ॥३७-३८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण के संवाद में बाल-गणेश-दर्शन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ॥९॥

दशमोऽध्यायः

तौ दम्पती बहिर्गत्वा पुत्रमङ्गलहेतवे। विविधानि च रत्नानि द्विजेभ्यो ददतुर्मुदा ॥१॥
बन्दिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च दानानि विविधानि च। नानाविधानि वाद्यानि वादयामास शंकरः ॥२॥
हिमालयश्च रत्नानां ददौ लक्षं द्विजातये। सहस्रं च गजेन्द्राणामश्वानां च त्रिलक्षकम् ॥३॥
दशलक्षं गवां चैव पञ्चलक्षं सुवर्णकम्। मुक्तामाणिक्यरत्नानि मणिश्रेष्ठानि यानि च ॥४॥
अन्यान्यपि च दानानि वस्त्राण्याभरणानि च। सर्वाण्यमूल्यरत्नानि क्षीरोदोत्पत्तिकानि च ॥५॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ विष्णुः कौस्तुभं कौतुकान्वितः। ब्रह्मा विशिष्टदानानि विप्राणां वाञ्छितानि च ॥
सुदुर्लभानि सृष्टौ च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥६॥
धर्मः सूर्यश्च शक्रश्च देवाश्च मुनयस्तथा। गन्धर्वाः पर्वता देव्यो ददुर्दानं क्रमेण च ॥७॥
तापसानां सहस्राणि रुचकानां शतानि च। शतानि गन्धसाराणां मणीन्द्राणां च नारद ॥८॥
माणिक्यानां सहस्राणि रत्नानां च शतानि च। शतानि कौस्तुभानां च हीरकाणां शतानि च ॥
हरिद्वर्णमणीन्द्राणां सहस्राणि मुदाऽन्विताः ॥९॥
गवां रत्नानि लक्षाणि गजरत्नसहस्रकम्। अमूल्यान्यश्वरत्नानि श्वेतवर्णानि कौतुकात् ॥१०॥
शतलक्षं सुवर्णानां वह्निशुद्धांशुकानि च। ब्राह्मणेभ्यो ददौ ब्रह्मा तत्र क्षीरोदधिर्मुदा ॥११॥
हारं चामूल्यरत्नानां त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। अतीव निर्मलं सारं सूर्यभानुविनिन्दकम् ॥१२॥
परिष्कृतं च माणिक्यैर्हीरकैश्च विराजितम्। रम्यं कौस्तुभमध्यस्थं ददौ देवी सरस्वती ॥१३॥

अध्याय १०

गणेश-जन्मोत्सव

नारायण बोले—उन दोनों दम्पति ने बाहर दरवाजे पर पुत्र के मंगलार्थ ब्राह्मणों को अनेक भाँति के रत्न प्रदान किये ॥१॥ बन्दीगण और भिक्षुकों को भी अनेक भाँति के दान दिये और शंकर ने अनेक प्रकार के बाजे बजवाये ॥२॥ हिमालय ने एक लाख रत्न ब्राह्मणों को दान दिये तथा एक सहस्र गजेन्द्र, तीन लाख घोड़े, दस लाख गौएँ, पाँच लाख सुवर्ण, मोती, माणिक्य, रत्न, अन्य श्रेष्ठ मणियाँ, सुन्दर वस्त्र, आभूषण, क्षीरसागर से उत्पन्न अमूल्य रत्न तथा अन्य प्रकार के दान प्रदान किये। विष्णु ने कौतुकवश कौस्तुभ का दान ब्राह्मणों को अर्पित किया। ब्रह्मा ने सुप्रसन्न होकर ब्राह्मणों को उनके अभिलषित विशिष्ट दान से सन्तुष्ट किया, जो उनकी सृष्टि में अति दुर्लभ था ॥३-६॥ इसी प्रकार धर्म, सूर्य और इन्द्र आदि देव, मुनिवृन्द, गन्धर्वगण, पर्वत एवं देवियों ने क्रमशः ब्राह्मणों को दान प्रदान किया ॥७॥ एक सहस्र माणिक्य, सौ रत्न, सौ कौस्तुभ मणि, सौ हीरे, एक सहस्र नीलमणि, एक लाख गौएँ, एक लाख रत्न, एक सहस्र उत्तम गज, श्वेत वर्ण के अमूल्य घोड़े, सौ लाख सुवर्ण, अग्निविशुद्ध वस्त्र ब्राह्मणों को ब्रह्मा ने प्रदान किये। क्षीरसागर ने अमूल्य रत्नों का हार, जो तीनों लोकों में दुर्लभ, अतिनिर्मल, ठोस सूर्य-किरण को तिरस्कृत करनेवाला, परिष्कृत, माणिक्य और हीरों से सुशोभित, रम्य एवं मध्य भाग में कौस्तुभ मणि से विभूषित था

त्रैलोक्यसारं हारं च सद्रत्नगणनिर्मितम्। भूषणानि च सर्वाणि सावित्री च ददौ मुदा ॥१४॥
लक्षं सुवर्णलोष्टानां धनानि विविधानि च। शतान्यमूल्यरत्नानां कुबेरश्च ददौ मुदा ॥१५॥
दानानि दत्त्वा विप्रेभ्यस्ते सर्वे ददृशुः शिशुम्। परमानन्दसंयुक्ताः शिवपुत्रोत्सवे मुने ॥१६॥
भारं वोढुमशक्ताश्च ब्राह्मणा बन्दिस्तथा। स्थायंस्थायं च गच्छन्तो धनानि पथि कातराः ॥१७॥
कथयन्ति कथाः सर्वे विश्रान्ताः पूर्वदायिनाम्। वृद्धाः शृण्वन्ति मुदिता युवानो भिक्षुका मुने ॥१८॥
विष्णुः प्रमुदितस्तत्र वादयामास दुन्दुभिम्। संगीतं गापयामास कारयामास नर्तनम् ॥१९॥
वेदांश्च पाठयामास पुराणानि च नारद। मुनीन्द्रानानयामास पूजयामास तान्मुदा ॥२०॥
आशिषं दापयामास कारयामास मङ्गलम्। सार्धं देवैश्च देवीभिर्ददौ तस्मै शुभाशिषः ॥२१॥

विष्णुरुवाच

शिवेन तुल्यं ज्ञानं ते परमायुश्च बालक। पराक्रमे मया तुल्यः सर्वसिद्धीश्वरो भव ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

यशसा ते जगत्पूर्णं सर्वपूज्यो भवाचिरम्। सर्वेषां पुरतः पूजा भवत्वतिसुदुर्लभा ॥२३॥

धर्म उवाच

मया तुल्यः सुधर्मिष्ठो भवान्भवतु दुर्लभः। सर्वज्ञश्च दयायुक्तो हरिभक्तो हरेः समः ॥२४॥

सरस्वती देवी ने ऐसा हार प्रदान किया, जो तीनों का सारभाग तथा, उत्तम रत्नों से सुरचित था। सावित्री ने प्रेम से समस्त आभूषण अर्पित किये ॥८-१४॥ कुबेर ने प्रसन्न होकर एक लाख सुवर्ण की ईंटें, अनेक भाँति के धन और सौ अमूल्य रत्न दान किये ॥१५॥ हे मुने! शिव के पुत्रोत्सव में इस प्रकार ब्राह्मणों को दान देने के उपरान्त उन सब ने परमानन्द मग्न होकर बच्चे का दर्शन किया ॥१६॥ उस समय ब्राह्मणगण और बन्दी वृन्द दान के धन से बोझिल होने के नाते मार्ग में कातर होकर धीरे-धीरे चल रहे थे ॥१७॥ हे मुने! वे लोग विश्राम करते हुए पूर्वदाताओं की कथा भी कर रहे थे, जिसे वृद्ध, युवा सभी भिक्षुक आदि सप्रेम सुन रहे थे ॥१८॥ हे नारद! विष्णु ने प्रसन्न होकर नगाड़े बजवाये, संगीत और नाच कराया, वेदों और पुराणों का पाठ कराया, मुनीन्द्रों को बुलाकर प्रसन्नतापूर्वक उनकी अर्चना की और उनके द्वारा बच्चे को मंगल आशीर्वाद दिलवाया। उनके साथ देवों और देवियों ने भी शुभाशीर्वाद प्रदान किया ॥१९-२१॥

विष्णु बोले—हे बालक! शिव के समान तुम्हारा ज्ञान और परमायु हो, मेरे समान पराक्रम हो और समस्त सिद्धियों के अधीश्वर हो जाओ ॥२२॥

ब्रह्मा बोले—तुम्हारे यश से समस्त जगत् आच्छन्न हो, शीघ्र ही सबके पूज्य बनो और सभी लोगों के पहले तुम्हारी अति दुर्लभ पूजा हो ॥२३॥

धर्म बोले—मेरे समान आप दुर्लभ धर्मात्मा हों, सर्वज्ञ, दयालु, हरिभक्त और भगवान् के समान हों ॥२४॥

महादेव उवाच

दाता भव मया तुल्यो हरिभक्तश्च बुद्धिमान्। विद्यावान्पुण्यवाञ्छान्तो दान्तश्च प्राणवल्लभ ॥२५॥

लक्ष्मीरुवाच

मम स्थितिश्च गेहे ते देहे भवतु शाश्वती। पतिव्रता मया तुल्या शान्ता कान्ता मनोहरा ॥२६॥

सरस्वत्युवाच

मया तुल्या सुकविता धारणाशक्तिरेव च। स्मृतिर्विवेचनाशक्तिर्भवत्वतितरां सुत ॥२७॥

सावित्र्युवाच

वत्साहं वेदजननी वेदज्ञानी भवाचिरम्। मन्मन्त्रजपशीलश्च प्रवरो वेदवादिनाम् ॥२८॥

हिमालय उवाच

श्रीकृष्णे ते मतिः शश्वद्भक्तिर्भवतु शाश्वती। श्रीकृष्णतुल्यो गुणवान्भव कृष्णपरायणः ॥२९॥

मेनकोवाच

समुद्रतुल्यो गाम्भीर्ये कामतुल्यश्च रूपवान्। श्रीयुक्तः श्रीपतिसमो धर्मे धर्मसमो भव ॥३०॥

वसुंधरोवाच

क्षमाशीलो मया तुल्यः शरण्यः सर्वरत्नवान्। निर्विघ्नो विघ्ननिघ्नश्च भव वत्स शुभाश्रयः ॥३१॥

महादेव बोले—हे प्राणप्रिय ! मेरे समान दाता, हरिभक्त, बुद्धिमान्, विद्यावान्, पुण्यवान्, शान्त और दमनशील हो ॥२५॥

लक्ष्मी बोलीं—तुम्हारे देह-गेह में मेरी निरन्तर स्थिति रहेगी, मेरे ही समान पतिव्रता, मनोहर और शान्ता स्त्री तुम्हें मिलेगी ॥२६॥

सरस्वती बोलीं—हे सुत ! मेरे समान उत्तम कविता, अत्यन्त धारणा-शक्ति, स्मरण-शक्ति और विवेचन-शक्ति हो ॥२७॥

सावित्री बोलीं—हे वत्स ! मैं वेदमाता हूँ, तुम शीघ्र वेदज्ञानी हो, मेरा मंत्र जप करने का स्वभाव और वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ हो ॥२८॥

हिमालय बोले—भगवान् श्रीकृष्ण में तुम्हारी मति अतिशय निरन्तर लगी रहे, उनकी शाश्वती भक्ति तुम्हें प्राप्त हो, उनके समान गुणवान् हो और कृष्णपरायण हो ॥२९॥

मेनका बोली—समुद्र के तुल्य गम्भीर, काम के समान रूपवान्, विष्णु के समान श्रीयुक्त और धर्म के समान धार्मिक हो ॥३०॥

वसुन्धरा बोली—हे वत्स ! मेरे समान क्षमाशील, शरणप्रद, समस्तरत्नयुक्त, विघ्नरहित, विघ्नविनाशक और शुभसदन हो ॥३१॥

पार्वत्युवाच

ताततुल्यो महायोगी सिद्धः सिद्धिप्रदः शुभः। मृत्युंजयश्च भगवान्भवत्वतिविशारदः ॥३२॥
ऋषयो मुनयः सिद्धा सर्वे युयुजुराशिषः। ब्राह्मणा बन्दिनश्चैव युयुजुः सर्वमङ्गलम् ॥३३॥
सर्वं ते कथितं वत्स सर्वमङ्गलमङ्गलम्। गणेशजन्मकथनं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥३४॥
इमं सुमङ्गलाध्यायं यः शृणोति सुसंयतः। सर्वमङ्गलसंयुक्तः स भवेन्मङ्गलालयः ॥३५॥
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम्। कृपणो लभते सत्त्वं शश्वत्संपत्प्रदायि च ॥३६॥
भार्यार्थी लभते भार्यां प्रजार्थी लभते प्रजाम्। आरोग्यं लभते रोगी सौभाग्यं दुर्भगा लभेत् ॥३७॥
भ्रष्टपुत्रं नष्टधनं प्रोषितं च प्रियं लभेत्। शोकाविष्टः सदाऽऽनन्दं लभते नात्र संशयः ॥३८॥
यत्पुण्यं लभते मर्त्यो गणेशाख्यानकश्रुतौ। तत्फलं लभते नूनमध्यायश्रवणान्मुने ॥३९॥
अयं च मङ्गलाध्यायो यस्य गेहे च तिष्ठति। सदा मङ्गलसंयुक्तः स भवेन्नात्र संशयः ॥४०॥
यात्राकाले च पुण्याहे यः शृणोति समाहितः। सर्वाभीष्टं स लभते श्रीगणेशप्रसादतः ॥४१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणेशख० नारदना० गणेशोद्भवमङ्गलं
नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

पार्वती बोलीं–पिता के समान महायोगी, सिद्ध, सिद्धिदायक, शुभ, ऐश्वर्य सम्पन्न मृत्युञ्जय तथा अतिविशारद हों। अनन्तर ऋषियों, मुनियों और सिद्धों ने शुभाशिष प्रदान किया। ब्राह्मणों और बन्दियों ने समस्त मंगल प्रदान किया ॥३२-३३॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने गणेश-जन्म तुम्हें सुना दिया, जो समस्त मंगलों का मंगल और समस्त विघ्नों का विनाशक है ॥३४॥ इस मंगलाध्याय का जो संयमपूर्वक श्रवण करता है, वह समस्त मंगलों से युक्त एवं मंगलों का आश्रय होता है ॥३५॥ पुत्रहीन को पुत्र, निर्धन को धन तथा कृपण को सत्त्व की प्राप्ति होती है और निरन्तर सम्पत्ति भी। स्त्री चाहने वाले को स्त्री, प्रजार्थी को प्रजा, रोगी को आरोग्य, अभागे को सौभाग्य प्राप्त होता है ॥३६-३७॥ उसी प्रकार खोये हुए पुत्र की प्राप्ति, नष्ट धन की प्राप्ति और प्रवासी प्रिय की प्राप्ति होती है। शोकाकुल को सदा आनन्द प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं ॥३८॥ हे मुने! गणेश जी के आख्यान के सुनने से मनुष्य को जिस पुण्य की प्राप्ति होती है वह पुण्य इस अध्याय के सुनने से भी निश्चय प्राप्त होता है ॥३९॥ और यह मंगलाध्याय जिसके घर में विराजमान रहता है वह सदा मंगलयुक्त होता है, इसमें संशय नहीं ॥४०॥ यात्रा के समय और पुण्य दिवस में सावधान होकर जो इसे सुनता है, वह श्रीगणेश की कृपा से सब अभीष्ट प्राप्त करता है ॥४१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में
गणेशोद्भवमंगल नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

अथैकादशोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरिस्तमाशिषं कृत्वा रत्नसिंहासने वरे। देवैश्च मुनिभिः सार्धमवसत्तत्र संसदि ॥१॥
दक्षिणे शंकरस्तस्य वामे ब्रह्मा प्रजापतिः। पुरतो जगतां साक्षी धर्मो धर्मवतां वरः ॥२॥
तथा धर्मसमीपे च सूर्यः शक्रः कलानिधिः। देवाश्च मुनयो ब्रह्मन्नूषुः शैलाः सुखासने ॥३॥
ननर्त नर्तकश्रेणी जगुर्गन्धर्वकिंनराः। श्रुतिसारं श्रुतिसुखं तुष्टुवुः श्रुतयो हरिम् ॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र द्रष्टुं शंकरनन्दनम्। आजगाम महायोगी सूर्यपुत्रः शनैश्चरः ॥५॥
अत्यन्तनम्रवदन ईषन्मुद्रितलोचनः। अन्तर्बहिः स्मरन्कृष्णं कृष्णैकगतमानसः ॥६॥
तपःफलाशी[1] तेजस्वी ज्वलदग्निशिखोपमः। अतीव सुन्दरः श्यामः पीताम्बरधरो वरः ॥७॥
प्रणम्य विष्णुं ब्रह्माणं शिवं धर्मं रविं सुरान्। मुनीन्द्रान्बालकं द्रष्टुं जगाम तदनुज्ञया ॥८॥
प्रधानद्वारमासाद्य शिवतुल्यपराक्रमम्। द्वाःस्थं वै शूलहस्तं च विशालाक्षमुवाच ह ॥९॥

अध्याय ११

शनैश्चर के साथ पार्वती का कथोपकथन

नारायण बोले—उस बालक को शुभाशिष प्रदान करके भगवान् विष्णु देवों और मुनियों समेत सभा-मध्य में उत्तम रत्न-सिंहासन पर विराजमान हुए ॥१॥ उनके दाहिने भाग में शंकर, बायें भाग में प्रजापति ब्रह्मा, सामने जगत् के साक्षी एवं धार्मिकों में सर्वश्रेष्ठ धर्म स्थित हुए ॥२॥ हे ब्रह्मन्! धर्म के समीप सूर्य, इन्द्र, कलानिधि (चन्द्र), देव, मुनि और पर्वतगण उस स्थान पर सुखासीन हुए ॥३॥ नृत्य करने वालों की श्रेणी (अप्सरायें) नृत्य करने लगी, गन्धर्व और किन्नर गान करने लगे और श्रुतियाँ वेद के तत्त्व भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगीं, जो सुनने में अति मधुर लग रही थी ॥४॥ इसी बीच शंकर-नन्दन (गणेश) को देखने के लिए सूर्य के पुत्र महायोगी शनैश्चर आये ॥५॥ वे अत्यन्त नीचे मुख किये, नेत्र को थोड़ा मूंदे हुए एवं भगवान् कृष्ण में दत्तचित्त होकर बाहर-भीतर सभी ओर कृष्ण का स्मरण कर रहे थे ॥६॥ वे तपःफल का उपभोग करने वाले तेजस्वी, प्रज्वलित अग्नि की शिखा के समान, अति सुन्दर श्याम वर्ण और पीताम्बर से भूषित थे ॥७॥ विष्णु, ब्रह्मा, शिव, धर्म, सूर्य आदि देवों और मुनियों को प्रणाम कर शनि उनकी आज्ञा से बालक के दर्शनार्थ गये ॥८॥ प्रधान दरवाजे पर पहुँचकर द्वारपाल विशालाक्ष से, जो शिव के समान पराक्रमी और हाथ में शूल लिये था, शनि ने कहा ॥९॥

---

१ क ०लानि संयम्य ज्व०।

शनैश्चर उवाच

शिवाज्ञया शिशुं द्रष्टुं यामि शंकरकिंकर। विष्णुप्रमुखदेवानां मुनीनामनुरोधतः ॥१०॥
आज्ञां देहि च मां गन्तुं पार्वतीसंनिधिं बुध। पुनर्यामि शिशुं दृष्ट्वा विषयासक्तमानसः ॥११॥

विशालाक्ष उवाच

आज्ञावहो न देवानां नाहं शंकरकिंकरः। मार्गं दातुं न शक्तोऽहं विना मन्मातुराज्ञया ॥१२॥
इत्युक्त्वाऽभ्यन्तरभ्येत्य प्रेरितः स शिवाज्ञया। ददौ मार्गं ग्रहेशाय विशाल[illegible] मुदा ततः ॥१३॥
शनिरभ्यन्तरं गत्वा चानम्रनम्रकंधरः। रत्नसिंहासनस्थां च पार्वतीं [illegible]मतां मुदा ॥१४॥
सखिभिः पञ्चभिः शश्वत्सेवितां श्वेतचामरैः। सखिदत्तं च ताम्बूलमुप[illegible] सुवासितम् ॥१५॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्। पश्यन्तीं नर्तकीनृत्यं पुत्रं धृ[illegible] च वक्षसि ॥१६॥
नतं सूर्यसुतं दृष्ट्वा दुर्गा संभाष्य सत्वरम्। शुभाशिषं ददौ तस्मै पृष्ट्वा तन्मङ्गलं शुभम् ॥१७॥

पार्वत्युवाच

कथमानम्रवक्त्रस्त्वं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम्। किं न पश्यसि मां साधो बालकं वा ग्रहेश्वर ॥१८॥

शनिरुवाच

सर्वे स्वकर्मणा साध्वि भुञ्जते तपसः फलम्। शुभाशुभं च यत्कर्म कोटिकल्पैर्न लुप्यते ॥१९॥

शनैश्चर बोले—हे शंकर के सेवक ! शिव जी की आज्ञा और विष्णु आदि देवों और मुनियों के अनुरोध से मैं बालक के दर्शनार्थ जा रहा हूँ ॥१०॥ अतः हे विद्वान् ! पार्वती के समीप जाने के लिए मुझे आज्ञा प्रदान करो ! मैं बच्चे को देखकर पुनः लौट आऊँगा क्योंकि मेरा चित्त सदैव विषयों में ही लगा रहता है ॥११॥

विशालाक्ष बोले—मैं देवताओं का आज्ञाकारी नहीं हूँ और न शंकर का भृत्य हूँ। बिना अपनी माता की आज्ञा लिये मार्ग देने में असमर्थ हूँ ॥१२॥ इतना कहकर वह भीतर चला गया और पार्वती जी की आज्ञा लेकर विशालाक्ष ने हर्ष से शनि को आगे जाने दिया ॥१३॥ भीतर जाकर शनि ने कन्धा झुकाये, मुसकराती हुई पार्वती को, जो रत्नसिंहासन पर सुशोभित थीं, नमस्कार किया ॥१४॥ पाँच सखियाँ श्वेत चामर डुलाती हुई, पार्वती की निरन्तर सेवा कर रही थीं। और पार्वती जी सखी के दिये हुए सुवासित पान चबा रही थीं तथा जो अग्निशुद्ध वस्त्र से सुसज्जित और रत्नों के भूषणों से भूषित होकर गोद में बालक लिए अप्सराओं का नृत्य देख रही थीं ॥१५-१६॥ सूर्य-पुत्र शनि को नीचे मुख किये देखकर दुर्गा ने बड़ी शीघ्रता से कहा—और शुभाशीर्वाद देकर उससे कुशल-मंगल पूछा ॥१७॥

पार्वती बोलीं—हे साधो ! हे ग्रहेश्वर ! तुम नीचे मुख क्यों किये हो, मैं सुनना चाहती हूँ। मेरे पुत्र की ओर तुम क्यों नहीं देखते हो ? ॥१८॥

शनि बोले—हे साध्वि ! सभी लोग अपने-अपने कर्मों के फल भोगते हैं। जो शुभ-अशुभ कर्म किया हुआ रहता है, करोड़ों कल्प व्यतीत होने पर भी लुप्त नहीं होता है ॥१९॥ कर्मवश जीव ब्रह्मा, इन्द्र और सूर्य के भवन में जन्म

कर्मणा जायते जन्तुर्ब्रह्मेन्द्रार्यममन्दिरे। कर्मणा नरगेहेषु पश्वादिषु च कर्मणा॥२०॥
कर्मणा नरकं याति वैकुण्ठं याति कर्मणा। स्वकर्मणा च राजेन्द्रो भृत्यश्चापि स्वकर्मणा॥२१॥
कर्मणा सुन्दरः शश्वद्व्याधियुक्तः स्वकर्मणा। कर्मणा विषयी मातर्निर्लिप्तश्च स्वकर्मणा॥२२॥
कर्मणा धनवाँल्लोको दैन्ययुक्तः स्वकर्मणा। कर्मणा सत्कुटुम्बी च कर्मणा बन्धुकण्टकः॥२३॥
सुभार्यश्च सुपुत्रश्च सुखी शश्वत्स्वकर्मणा। अपुत्रकश्च कुस्त्रीको निस्त्रीकश्च स्वकर्मणा॥२४॥
इतिहासं चातिगोप्यं शृणु शंकरवल्लभे। अकथ्यं जननीपार्श्वे लज्जाजनकारणम्॥२५॥
आ बाल्यात्कृष्णभक्तोऽहं कृष्णध्यानैकमानसः। तपस्यासु रतः शश्वद्विषयेऽपि रतः सदा॥२६॥
पिता ददौ विवाहे तु कन्यां चित्ररथस्य च। अतितेजस्विनी शश्वत्तपस्यासु रता सती॥२७॥
एकदा सा त्वृतुस्नाता सुवेषं स्वं विधाय च। रत्नालंकारसंयुक्ता मुनिज्ञानसमोहिनी॥२८॥
हरेः पादं ध्यायमानं मां मां पश्येत्युवाच ह। मत्समीपं समागत्य सस्मिता लोललोचना॥२९॥
शशाप मामपश्यन्तमृतुनाशाच्च कोपतः। बाह्यज्ञानविहीनं च ध्यानसंलग्नमानसम्॥३०॥
न दृष्टोऽहं त्वया येन न कृतं ह्यृतुरक्षणम्। त्वया दृष्टं च यद्वस्तु मूढ सर्वं विनश्यति॥३१॥

ग्रहण करता है, कर्म द्वारा मनुष्यों के घर और कर्म के ही कारण पश्वादि योनियों में जाता है॥२०॥ कर्म से नरकगामी होता है और कर्म से ही वैकुण्ठ जाता है। अपने ही कर्म से महाराज और अपने ही कर्म के कारण भृत्य (सेवक) होता है॥२१॥ कर्म से सुन्दर और अपने ही कर्मवश रोगी तथा हे मातः! कर्म से ही विषयी और अपने ही कर्म से निर्लिप्त होता है॥२२॥ कर्म से लोग धनवान् होते हैं और अपने कर्म के कारण ही दीन होते हैं। कर्म से उत्तम परिवार और कर्म से ही काँटे के समान बन्धु वाला होता है॥२३॥ अपने ही कर्म से निरन्तर उत्तम स्त्री और उत्तम पुत्र की प्राप्ति होती है तथा स्वयं सुखी रहता है। अपने ही कर्म से निपूत, दुष्टा स्त्री वाला अथवा स्त्रीरहित होता है॥२४॥ हे शंकरवल्लभे! एक अति गुप्त इतिहास सुनो, जो लज्जाजनक होने के कारण माता के सामने कहने योग्य नहीं है॥२५॥ मैं बाल्यावस्था से ही भगवान् कृष्ण का भक्त हूँ, उन्हीं के एकमात्र ध्यान में चित्त को लगाये रहता हूँ, उन्हीं के जप में निरन्तर लगा रहता हूँ और विषयों में भी सदा रत रहता हूँ। पिता ने चित्ररथ की कन्या के साथ विवाह कर दिया जो अति तेजपूर्ण और तपस्या में सदैव लगी रहती है॥२६-२७॥ एक बार ऋतुस्नान करके उसने अपना उत्तम वेष बनाया। रत्नों के आभूषणों से विभूषित होकर वह मुनियों के चित्त को मोहित करने वाली बन गयी॥२८॥ मन्द-मन्द हँसती हुई वह चञ्चलनयना मेरे समीप आई और मुझसे बोली कि मुझे देखो। उस समय मेरा मन ध्यान में संलग्न था और मैं बाह्य ज्ञान से विहीन था। इस लिए उसकी ओर न देखते हुए मुझे उसने ऋतु-स्नान व्यर्थ हो जाने के कारण क्रोध से शाप दे दिया—हे मूढ़! तुमने इस समय मुझे देखा तक नहीं और मेरे ऋतुकाल की रक्षा नहीं की (अर्थात् उपभोग नहीं किया), इसलिए जो वस्तु तुम देखोगे वह सब नष्ट हो जायगी॥२९-३१॥ पश्चात् ध्यान से विरत होकर मैंने उस पतिव्रता को

---

१ ख. पश्यन्ती मदमोहिता।

अहं च विरतो ध्यानात्तोषयंस्तां तदा सतीम्। शापं मोक्तुं न शक्ता सा पश्चात्तापमवाप ह ॥३२॥
तेन मातर्न पश्यामि किंचिद्वस्तु स्वचक्षुषा। ततः[1] प्रकृतिनाऽस्यः प्राणिहिंसाभयादहम् ॥३३॥
शनैश्चरवचः श्रुत्वा चाहसत्पार्वती मुने। उच्चैः प्रजहसुः सर्वा नर्तकीकिंनरीगणाः ॥३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० शनिपार्वतीसं० शनेरधोदृष्टौ कारणकथनं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

नारायण उवाच

दुर्गा तद्वचनं श्रुत्वा सस्मार हरिमीश्वरम्। ईश्वरेच्छावशीभूतं जगदेवेत्युवाच ह ॥१॥
सा च देवी दैववशात् शनिं प्रोवाच कौतुकात्। पश्य मां मच्छिशुमिति निषेकः केन वार्यते ॥२॥
पार्वत्या वचनं श्रुत्वा शनिर्मेने हृदा स्वयम् पश्यामि किं न पश्यामि पार्वतीसुतमित्यहो ॥३॥
यदि बालो मया दृष्टस्तस्य विघ्नो भवेद् ध्रुवम्। अन्यथा सुप्रशस्तं च पुरतः स्वात्मरक्षणम् ॥४॥

सन्तुष्ट किया किन्तु वह शापमुक्त करने में असमर्थ थी, इसीलिए केवल पश्चात्ताप का अनुभव किया ॥३२॥ हे मातः! इसी कारण मैं कोई वस्तु अपनी आँखों से नहीं देखता हूँ। और कहीं प्राणियों की हिंसा न हो जाये इस भय से मैंने सदैव नीचे मुख करने का स्वभाव ही बना लिया है ॥३३॥ हे मुने! शनैश्चर की ऐसी बातें सुनकर पार्वती हँस पड़ीं और वहाँ नृत्य करने वाली किन्नरियाँ भी ठहाका मारकर हँसने लगीं ॥३४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद के प्रकरण में शनि-पार्वती-संवाद में शनि की अधोदृष्टि का कारण वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११॥

अध्याय १२

शनि के देखने से गणेश का शिरःपतन तथा विष्णु के द्वारा शिरोयोजन

नारायण बोले—दुर्गा ने उसकी बातें सुन कर भगवान् का स्मरण किया और कहा कि समस्त संसार ईश्वर की इच्छा के वशीभूत है ॥१॥ अनन्तर दैवसंयोग से कौतुकवश देवी पार्वती ने शनि से कहा—मुझे और मेरे बालक को तुम देखो। जन्मोत्सव को कौन रोकता है ॥२॥ पार्वती की बात सुन कर शनि ने अपने मन में विचार किया कि—पार्वती-पुत्र का मैं दर्शन करूँ या न करूँ। क्योंकि यदि मैं बच्चे को देखता हूँ, तो निश्चित ही उसका विघ्न हो जायगा और नहीं तो उनके सामने अपनी आत्मरक्षा अत्यन्त प्रशस्त हो जाएगी ॥३-४॥

---

१ क. ०तः प्रभृति।

इत्येवमुक्त्वा धर्मिष्ठो धर्मं कृत्वा तु साक्षिणम्। बालं द्रष्टुं मनश्चक्रे न तु तन्मातरं शनिः ॥५॥
विषण्णमानसः पूर्वं शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः। सव्यलोचनकोणेन ददर्श च शिशोर्मुखम् ॥६॥
शनेश्च दृष्टिमात्रेण चिच्छिदे मस्तकं मुने। अक्षुन्निमीलयामास तस्थौ नम्राननः शनिः ॥७॥
तस्थौ च पार्वतीक्रोडे तत्सर्वाङ्गं सलोहितम्। विवेश मस्तकं कृष्णे गत्वा गोलोकमीप्सितम् ॥८॥
मूर्च्छां संप्राप सा देवी विलप्य च भृशं मुहुः। मृतेव च पृथिव्यां तु कृत्वा वक्षसि बालकम् ॥९॥
विस्मितास्ते सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा। देव्यश्च शैला गन्धर्वाः सर्वे कैलासवासिनः ॥१०॥
तान्सर्वान्मूर्च्छितान्दृष्ट्वैवाऽऽरुह्य गरुडं हरिः। जगाम पुष्पभद्रां स चोत्तरस्यां दिशि स्थिताम् ११॥
पुष्पभद्रानदीतीरे ह्यपश्यत्काानने स्थितम्। गजेन्द्रं निद्रितं तत्र शयानं हस्तिनीयुतम् ॥१२॥
तयोदक्छिरसं रम्यं मूर्च्छितं सुरतश्रमात्। परितः शावकान्कृत्वा परमानन्दमानसम् ॥१३॥
शीघ्रं सुदर्शनेनैव चिच्छिदे तच्छिरो मुदा। स्थापयामास गरुडे रुधिराक्तं मनोहरम् ॥१४॥
गजच्छिन्नाङ्गविक्षेपात्प्रबोधं प्राप्य हस्तिनी। शावकान्बोधयामास चाशुभं वदती तदा ॥१५॥
रुरोद शावकैः सार्धं सा विलप्य शुचाऽऽतुरा। तुष्टाव कमलाकान्तं शान्तं सस्मितमीश्वरम् ॥१६॥
शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम्। गरुडस्थं जगत्कान्तं भ्रामयन्तं सुदर्शनम् ॥१७॥

ऐसा सोच कर धर्मात्मा शनि ने धर्म को साक्षी बना कर बालक को देखने के लिए निश्चय किया न कि उसकी माता को ॥५॥ उनका मन पहले से ही खिन्न हो गया था और उनके कण्ठ, ओंठ, तालू सूखने लगे थे। अतः दाहिनी आँख के कोने से उन्होंने बच्चे का मुख देखा ॥६॥ हे मुने! शनि के देखते ही (बच्चे का) मस्तक कट गया और शनि आँखें बन्द कर नीचे मुख किये वहीं ठहर गये ॥७॥ पार्वती की गोद में बच्चे का सर्वांग (शिर विहीन धड़) रक्त से लोहित हो गया और वह (कटा हुआ) शिर गोलोक में जा कर भगवान् कृष्ण में प्रविष्ट हो गया ॥८॥ बार-बार अत्यन्त विलाप करके बालक को गोद में लेकर वह देवी मूर्च्छित होकर पृथिवी पर मृतक के समान गिर पड़ी ॥९॥ देव लोग आश्चर्यचकित होकर चित्र की पुतली की भाँति अवाक् रह गए और वहाँ उपस्थित अन्य देवियाँ, पर्वतगण, गन्धर्व एवं समस्त कैलास-निवासी वैसे हो गये ॥१०॥ उपरांत सभी लोगों को मूर्च्छित देखकर विष्णु गरुड़ पर बैठ कर उत्तर दिशा में स्थित पुष्पभद्रा नदी के तट पर गये ॥११॥ वहाँ पुष्पभद्रा नदी के तट पर पहुँच कर उन्होंने जंगल में हथिनियों के साथ शयन किये गजेन्द्र को देखा, जो सुरत के श्रम से श्रान्त होकर उत्तर शिर किए परमानन्द से सो रहा था और अपने चारों ओर बच्चों को लेटाये था ॥१२-१३॥ भगवान् ने प्रसन्न होकर सुदर्शन चक्र द्वारा उसका शिर काट कर गरुड़ पर रख लिया, जो रुधिर से तर और मनोहर था ॥१४॥ गज के मस्तक कटने से हथिनी जाग्रत हो गयी और अमंगल कहती हुई बच्चों को जगाने लगी। अनन्तर शोकाकुल होकर बच्चों समेत रोदन-विलाप करने लगी और कमलाकान्त भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगी, जो शान्त, स्मितभाव से युक्त, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये, पीताम्बर से विभूषित, गरुड पर स्थित, समस्त जगत् के कान्त एवं सुदर्शन चक्र घुमा रहे थे ॥१५-१७॥

निषेकं खण्डितुं शक्तं निषेकजनकं विभुम्। निषेकभोगदातारं भोगनिस्तारकारणम्॥१८॥
प्रभुस्तत्स्तवनात्तुष्टस्तस्यै विप्र वरं ददौ। मुण्डात्तुण्डं पृथक्कृत्य युयुजेऽन्यगजस्य च॥१९॥
जीवयामास तं तत्र ब्रह्मज्ञानेन सर्ववित्। सर्वाङ्गे योजयामास गजस्य चरणाम्बुजम्॥२०॥
त्वं जीवाऽकल्पपर्यन्तं परिवारैः समं गज। इत्युक्त्वा च मनोयायी कैलासं ह्याजगाम सः॥२१॥
आहृत्य[1] पार्वतीहस्ताद्बालं कृत्वा स्ववक्षसि। रुचिरं तच्छिरः सम्यग्योजयामास बालके॥२२॥
ब्रह्मस्वरूपो भगवान्ब्रह्मज्ञानेन लीलया। जीवयामास तं शीघ्रं हुंकारोच्चारणेन च॥२३॥
पार्वतीं बोधयित्वा तु कृत्वा क्रोडे च तं शिशुम्। बोधयामास तां कृष्ण आध्यात्मिकविबोधनैः॥२४॥

विष्णुरुवाच

ब्रह्मादिकीटपर्यन्तं फलं भुङ्क्ते स्वकर्मणः। जगद्बुद्धिस्वरूपाऽसि त्वं न जानासि किं शिवे॥२५॥
कल्पकोटिशतं भोगी जीविनां तत्स्वकर्मणा। उपस्थितो भवेन्नित्यं प्रतियोनौ शुभाशुभैः॥२६॥
इन्द्रः स्वकर्मणा कीटयोनौ जन्म लभेत्सति। कीटश्चापि भवेदिन्द्रः पूर्वकर्मफलेन वै॥२७॥
सिंहोऽपि मक्षिकां हन्तुमक्षमः प्राक्तनं विना। मशको हस्तिनं हन्तुं क्षमः स्वप्राक्तनेन च॥२८॥
सुखं दुःखं भयं शोकमानन्दं कर्मणः फलम्। सुकर्मणः सुखं हर्षमितरे पापकर्मणः॥२९॥

वे जन्म को खण्डित करने में समर्थ, जन्म के जनक, विभु, जन्म-भोग देने वाले और भोगों से निस्तार करने के एकमात्र कारण हैं॥१८॥ हे विप्र! प्रभु विष्णु ने उसकी स्तुति से संतुष्ट होकर उसे वर प्रदान किया और गज का मस्तक उसके धड़ पर रख कर ब्रह्मज्ञान द्वारा उसे जीवित कर दिया। तथा सर्ववेत्ता भगवान् ने गज के सर्वांग में अपने चरण-कमल का स्पर्श कराया और कहा—'हे गज! अपने परिवारों समेत एक कल्प तक तुम जीवित रहो।' इतना कह कर मन की भाँति (वेग से) चलने वाले भगवान् कैलास आ गये॥१९-२१॥ उन्होंने पार्वती के हाथ से बालक लेकर अपनी गोद में रख लिया तथा सुन्दर गज-मस्तक बालक के धड़ से जोड़ दिया॥२२॥ ब्रह्मस्वरूप भगवान् ने ब्रह्मज्ञान द्वारा लीला की भाँति 'हुँकार' उच्चारण करके उसे शीघ्र जीवित कर दिया॥२३॥ अनन्तर कृष्ण ने पार्वती को समझा-बुझा कर उनकी गोद में बालक रख दिया और आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा उन्हें प्रबोधित किया॥२४॥

विष्णु बोले—ब्रह्मा से लेकर कीड़े पर्यन्त सभी अपने कर्मों के फल भोगते हैं और तुम तो बुद्धि स्वरूप हो। हे शिवे! क्या तुम यह नहीं जानती हो कि—जीवों को अपने कर्म के कारण ही सौ करोड़ कल्पों का भोग प्राप्त होता है और शुभाशुभ कर्म द्वारा ही उन्हें प्रत्येक योनि में नित्य आना-जाना पड़ता है॥२५-२६॥ इन्द्र अपने कर्म वश कीट योनि में उत्पन्न होते हैं और कीट भी पूर्व किए कर्म फलों द्वारा इन्द्र हो जाता है॥२७॥ सिंह भी जन्मान्तरीय कर्म बिना मक्खी को मारने में अशक्त रहता है और कर्मवश मच्छर भी हाथी को मारने में समर्थ हो जाता है॥२८॥ इसलिए सुख, दुःख, भय, शोक और आनन्द कर्मों के फल हैं। सुकर्म का फल सुख-हर्ष है इससे अन्य पाप के फल हैं॥२९॥

१क. आगत्य पार्वतीस्थानं बोधयित्वा तु तं शिशुम्। बो०।

इहैव कर्मणो भोगः परत्र च शुभाशुभः। कर्मोपार्जनयोग्यं च पुण्यक्षेत्रं च भारतम् ॥३०॥
कर्मणः फलदाता च विधाता च विधेरपि। मृत्योर्मृत्युः कालकालो निषेकस्य निषेककृत् ॥३१॥
संहर्तुरपि संहर्ता पातुः पाता परात्परः। गोलोकनाथः श्रीकृष्णः परिपूर्णतमः स्वयम् ॥३२॥
वयं यस्य कलाः पुंसो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। महाविराडद्यदंशश्च यल्लोमविवरे जगत् ॥३३॥
कलांशाः केऽपि तद्दुर्गे कलांशांशाश्च केचन। चराचरं जगत्सर्वं तत्र तस्थौ विनायकः ॥३४॥
श्रीविष्णोर्वचनं श्रुत्वा परितुष्टा च पार्वती। स्तनं ददौ च शिशवे तं प्रणम्य गदाधरम् ॥३५॥
तुष्टाव पार्वती तुष्टा प्रेरिता शंकरेण च। कृताञ्जलिपुटा भक्त्या विष्णुं तं कमलापतिम् ॥३६॥
आशिषं युयुजे विष्णुः शिशुं च शिशुमातरम्। ददौ गले बालकस्य कौस्तुभं च स्वभूषणम् ॥३७॥
ब्रह्मा ददौ स्वमुकुटं धर्मो वै रत्नभूषणम्। क्रमेण देव्यो रत्नानि ददुः सर्वे यथोचितम् ॥३८॥
तुष्टाव तं महादेवश्चात्यन्तं हृष्टमानसः। देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः सर्वयोषितः ॥३९॥
दृष्ट्वा शिवः शिवा चैव बालकं मृतजीवितम्। ब्राह्मणेभ्यो ददौ तत्र कोटिरत्नानि नारद ॥४०॥
अश्वानां च गजानां च सहस्राणि शतानि च। बन्दिभ्यः प्रददौ तत्र बालके मृतजीविते ॥४१॥
हिमालयश्च संतुष्टो हृष्टा देवाश्च तत्र वै। ददुर्दानानि विप्रेभ्यो बन्दिभ्यः सर्वयोषितः ॥४२॥
ब्राह्मणान्भोजयामास कारयामास मङ्गलम्। वेदांश्च पाठयामास पुराणानि रमापतिः ॥४३॥

शुभाशुभ कर्मों द्वारा इस लोक और परलोक में भोग प्राप्त होता है और कर्म करने के योग्य पुण्य क्षेत्र भारत है ॥३०॥ कर्मों के फल देने वाले, ब्रह्मा के भी ब्रह्मा, मृत्यु के भी मृत्यु, काल के भी काल और निषेक का भी निषेक करने वाले तथा संहर्ता के संहारक और रक्षा करने वाले के भी रक्षक स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जो परिपूर्णतम, गोलोकनाथ एवं परे से भी परे हैं ॥३१-३२॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और हम लोग उनकी कला हैं, महाविराट् उनके अंश हैं और उनके लोम-विवरों में विश्व स्थित है ॥३३॥ हे दुर्गे ! कुछ लोग उनकी कला के अंश हैं, कुछ लोग कलांश के अंश हैं। इस प्रकार चराचर समस्त जगत् और विनायक उनमें स्थित हैं ॥३४॥ श्री विष्णु भगवान् की ऐसी बातें सुन कर पार्वती अति प्रसन्न हुईं और गदाधर भगवान् को प्रणाम कर बच्चे को दूध पिलाने लगीं ॥३५॥ शंकर की प्रेरणा वश पार्वती ने अति प्रसन्न होकर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़े, कमलापति भगवान् विष्णु की स्तुति की जिससे प्रसन्न होकर विष्णु ने बालक और उसकी माता, दोनों को शुभाशीर्वाद प्रदान किया तथा अपना कौस्तुभ आभूषण बालक के गले में पहना दिया ॥३६-३७॥ उसी प्रकार ब्रह्मा ने अपना मुकुट, धर्म ने रत्नाभूषण और देवियों ने क्रमशः यथोचित रत्न प्रदान किये ॥३८॥ अनन्तर महादेव ने अति हर्षित होकर भगवान् की स्तुति की। उसी भाँति देवगण, मुनि, पर्वत, गन्धर्व और सभी स्त्रियों ने स्तवन किया ॥३९॥ हे नारद ! शिव और शिवा ने बालक को जीवित देख कर ब्राह्मणों को करोड़ों रत्न प्रदान किये ॥४०॥ बालक के जीवित होने पर बन्दियों को एक सहस्र अश्व और सौ गजेन्द्र प्रदान किये ॥४१॥ संतुष्ट होकर हिमालय तथा प्रसन्नचित्त देवों और स्त्रियों ने बन्दियों एवं ब्राह्मणों को अनेक दान प्रदान किये ॥४२॥ रमापति विष्णु ने बच्चे के जीवित होने पर ब्राह्मणों को भोजन, मंगल और वेदों और पुराणों के पाठ कराये ॥४३॥

शनिं संलज्जितं दृष्ट्वा पार्वती कोपशालिनी। शशाप च सभामध्येऽप्यङ्गहीनो भवेति च ॥४४॥
दृष्ट्वा शप्तं शनिं सूर्यः कश्यपश्च यमस्तथा। तेऽतिरुष्टाः समुत्तस्थुर्गामुकाः शंकरालयात् ॥४५॥
रक्ताक्षास्ते रक्तमुखाः कोपप्रस्फुरिताधराः। तां धर्मसाक्षिणं कृत्वा विष्णुं संशप्तुमुद्यताः ॥४६॥
ब्रह्मा तान्बोधयामास विष्णुना प्रेरितः सुरैः। रक्तास्यां पार्वतीं चैव कोपप्रस्फुरिताधराम् ॥४७॥
ब्रह्मागमूचुस्ते तत्र क्रमेण समयोचितम्। भीरवो देवताः सर्वे मुनयः पर्वतास्तथा ॥४८॥

कश्यप उवाच

दुर्दृष्टोऽयं प्राक्तनेन पत्नीशापेन सर्वदा। बालं ददर्श यत्नेन तस्य वै मातुराज्ञया ॥४९॥

सूर्य उवाच

तं धर्मं साक्षिणं कृत्वा सूनोर्वै मातुराज्ञया। सत्पुत्रोऽतिप्रयत्नेन ह्यपश्यत्पार्वतीसुतम् ॥५०॥
यथा निरपराधेन मत्पुत्रं सा शशाप ह। तत्पुत्रस्याङ्गभङ्गश्च भविष्यति न संशयः ॥५१॥

यम उवाच

प्रदाय स्वयमाज्ञां च शशापेयं स्वयं कथम्। वयं शपामः को ऽधर्मो जिघांसोश्च विहिंसने ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

शशाप पार्वती रुष्टा स्त्रीस्वभावाच्च चापलात्। सर्वेषां वचनेनैव क्षन्तुमर्हन्तु साधवः ॥५३॥

उस समय शनि को अति लज्जित देख कर पार्वती क्रुद्ध हो गयीं और उस सभामध्य में ही शाप दिया—तुम अंगहीन हो जाओ ॥४४॥ शनि को शाप देते देखकर सूर्य, कश्यप और यम ने अत्यन्त रुष्ट होकर शंकर के गृह से यात्रा की तैयारी कर दी ॥४५॥ क्रोध से उनके नेत्र और मुख रक्तवर्ण हो गए, होंठ फड़कने लगे धर्म को साक्षी बना कर इन लोगों ने पार्वती और विष्णु को शाप देना चाहा ॥४६॥ अनन्तर विष्णु और देवों द्वारा प्रेरित होने पर ब्रह्मा ने सूर्य आदि देवों और पार्वती को समझाया, जिनका मुख रक्तवर्ण हो गया था और कोप से अधर फड़क रहा था ॥४७॥ उन लोगों ने क्रमशः ब्रह्मा से सामयिक बातें कहीं कि—देवता, सभी मुनिगण और पर्वत भीरु होते हैं ॥४८॥

कश्यप बोले—यह पत्नी-शाप द्वारा पहले से ही अशुभ दृष्टि वाला हो गया है किन्तु बालक को इसने उसकी माता की आज्ञा होने पर ही यत्न से देखा ॥४९॥

श्री सूर्य बोले—इसने धर्म को साक्षी बना कर और बालक की माता की आज्ञा होने पर अति प्रयत्न से बच्चे को देखा है ॥५०॥ किन्तु फिर भी इन्होंने निरपराध मेरे पुत्र को शाप दे दिया है, अतः उनके पुत्र का भी अंग भंग हो जायगा, इसमें संशय नहीं ॥५१॥

यम बोले—इन्होंने स्वयं आज्ञा प्रदान कर के स्वयं क्यों शाप दिया? इस पर हम लोग यदि शाप देते हैं तो अधर्म क्या है? क्योंकि हनन करने वाले की हिंसा करना अधर्म नहीं है? ॥५२॥

ब्रह्मा बोले—पार्वती ने रुष्ट होकर और स्त्री-स्वभाव-चपलता के कारण शाप दिया है, किन्तु साधु लोग क्षमाशील होते हैं, अतः आप लोग सभी लोगों के कहने से क्षमा कर दें ॥५३॥

दुर्गे दत्त्वा त्वमाज्ञां च पुत्रदर्शनहेतवे। कथं शपसि निर्दोषमतिथिं त्वद्गृहागतम् ॥५४॥
इत्युक्त्वा शनिमादाय बोधयित्वा च पार्वतीम्। तां तं समर्पणं चक्रे शापमोचनहेतवे ॥५५॥
बभूव पार्वती तुष्टा ब्रह्मणो वचनान्मुने। शान्ता बभूवुस्ते तत्र दिनेशयमकश्यपाः ॥५६॥
उवाच पार्वती तत्र संतुष्टा[1] तं शनैश्चरम्। प्रसादिता शिवेनैव ब्रह्मणा परिसेविता ॥५७॥

पार्वत्युवाच

ग्रहराजो भव शने मद्वरेण हरिप्रियः। चिरजीवी च योगीन्द्रो हरिभक्तस्य का विपत् ॥५८॥
अद्यप्रभृति निर्विघ्ना हरौ भक्तिर्दृढाऽस्तु ते। शापोऽमोघस्ततो मेऽद्य किंचित्खञ्जो भविष्यसि ॥५९॥
इत्युक्त्वा पार्वती तुष्टा बालं धृत्वा[2] च वक्षसि। उवास योषितां मध्ये तस्मै दत्त्वा शुभाशिषः ॥६०॥
शनिर्जगाम देवानां समीपं हृष्टमानसः। प्रणम्य भक्त्या तां ब्रह्मन्नम्बिकां जगदम्बिकाम् ॥६१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० गणपतिख० नारदना० शनिकृतगणेशदर्शनतज्जातगणेशशिरः-पतनविष्णुकृतगणेशशिरोयोजनशनिशापादिकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

(पुनः दुर्गा से कहा—)हे दुर्गे! पुत्र का दर्शन करने के लिए तुम्हीं ने आज्ञा प्रदान की थी, तो घर में आये हुए निर्दोष अतिथि को क्यों शाप दे रही हो ॥५४॥ इतना कहकर ब्रह्मा ने पार्वती को समझाने के अनन्तर शापमुक्त होने के लिए शनि को उन्हें सौंप दिया ॥५५॥ हे मुने! ब्रह्मा की बात सुन कर पार्वती प्रसन्न हो गयीं और सूर्य, यम, कश्यप भी शान्त हो गए ॥५६॥ अनन्तर सुप्रसन्न होकर शिव द्वारा प्रसन्न और ब्रह्मा द्वारा सुसेवित पार्वती ने शनैश्चर से कहा ॥५७॥

पार्वती बोलीं—हे शनि! मेरे वरदान द्वारा तुम ग्रहों का राजा, भगवान् का प्रिय, चिरजीवी और योगीन्द्र होगे। हरिभक्तों को कोई संकट नहीं होता है। आज से भगवान् में तुम्हारी निर्विघ्न और दृढ़ भक्ति होगी। मेरा शाप व्यर्थ नहीं होता है, अतः कुछ खञ्जपाद (लंगड़े) रहोगे ॥५८-५९॥ सुप्रसन्ना पार्वती ने इतना कह कर उसे शुभाशीर्वाद प्रदान कर बालक को अपनी गोद में रख लिया और स्त्रियों के बीच बैठ गयीं ॥६०॥ हे ब्रह्मन्! शनि ने भी हर्षित होकर जगज्जननी पार्वती को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और देवों के पास चले आये ॥६१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के तीसरे गणपतिखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में शनिकृत गणेश-दर्शन, उससे गणेश-शिर का पतन, पुनः विष्णु द्वारा गणेश के शिर जोड़ने और शनि के शाप आदि का कथन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

---

१ क. ०तुष्टं तं। २ क. कृत्वा।

त्रयोदशोऽध्यायः

नारायण उवाच

अथ विष्णुः शुभे काले देवैश्च मुनिभिः सह । पूजयामास तं बालमुपहारैरनुत्तमैः ॥१॥
सर्वाग्रे तव पूजा च मया दत्ता सुरोत्तम । सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भव वत्सेत्युवाच तम् ॥२॥
वनमालां ददौ तस्मै ब्रह्मज्ञानं च मुक्तिदम् । सर्वसिद्धिं प्रदायैव चकाराऽऽत्मसमं हरिः ॥३॥
ददौ द्रव्याणि चारूणि चोपचारांश्च षोडश । नामभिः[1] स्तवनं चक्रे मुनिभिश्च समं सुरैः ॥४॥
विघ्नेशश्च गणेशश्च हेरम्बश्च गजाननः । लम्बोदरश्चैकदन्तः शूर्पकर्णो विनायकः ॥५॥
एतान्यष्टौ च नामानि सर्वसिद्धिप्रदानि च । आशिषं दापयामास चाऽऽनयामास तान्मुनीन् ॥६॥
सिद्धासनं ददौ धर्मस्तस्मै ब्रह्मा कमण्डलुम् । शंकरो योगपट्टं च तत्त्वज्ञानं सुदुर्लभम् ॥७॥
रत्नसिंहासनं शक्रः सूर्यश्च मणिकुण्डले । माणिक्यमालां चन्द्रश्च कुबेरश्च किरीटकम् ॥८॥
वह्निशुद्धं च वसनं ददौ तस्मै हुताशनः । रत्नच्छत्रं च वरुणो वायू रत्नाङ्गुलीयकम् ॥९॥
क्षीरोदोद्भवसद्रत्नरचितं वलयं वरम् । मञ्जीरं चापि केयूरं ददौ पद्मालया मुने ॥१०॥
कण्ठभूषां च सावित्री भारती हारमुज्ज्वलम् । क्रमेण सर्वदेवाश्च देव्यश्च यौतुकं ददुः ॥११॥
मुनयः पर्वताश्चैव रत्नानि विविधानि च । वसुंधरा ददौ तस्मै वाहनाय च मूषकम् ॥१२॥

अध्याय १३

गणेश की पूजा, स्तुति और कवच

नारायण बोले—विष्णु ने शुभ मुहूर्त में देवों और मुनियों को साथ लेकर परमोत्तम उपहारों द्वारा उस बालक की अर्चना की और कहा—हे सुरोत्तम ! सब से पहले मैंने तुम्हारी पूजा की है अतः हे वत्स ! तुम सब के पूज्य एवं योगिराज होगे ॥१-२॥ भगवान् ने वनमाला, मुक्तिप्रद ब्रह्मज्ञान और समस्त सिद्धियाँ देकर उसे अपने समान बना दिया ॥३॥ सुन्दर द्रव्य और सोलहों उपचार अर्पित कर पश्चात् देवों और मुनियों समेत उनकी नाम-स्तुति करना आरम्भ किया—विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब, गजानन, लम्बोदर, एकदन्त, शूर्पकर्ण और विनायक, ये तुम्हारे आठ नाम समस्त सिद्धिप्रदायक हैं। फिर मुनियों को वहाँ बुलवा कर उनसे आशीर्वाद दिलवाया ॥४-६॥ धर्म ने उस बालक को सिद्धासन दिया, ब्रह्मा ने कमण्डलु, शंकर ने योग वस्त्र समेत अति दुर्लभ तत्त्वज्ञान प्रदान किया ॥७॥ इन्द्र ने रत्नसिंहासन, सूर्य ने मणि के युगल कुण्डल, चन्द्र ने माणिक्य-माला, कुबेर ने किरीट, अग्नि ने अग्नि की भाँति विशुद्ध वस्त्र, वरुण ने रत्न का छत्र और वायु ने रत्नों की अंगूठी अर्पित की। हे मुने ! लक्ष्मी ने क्षीर-सागर से उत्पन्न रत्नों का बना कड़ा, उत्तम नूपुर और केयूर (बहूँटा) प्रदान किया ॥८-१०॥ सावित्री ने कण्ठा, भारती ने उज्ज्वल हार तथा समस्त देवता एवं देवियों ने क्रमशः उपहार प्रदान किया ॥११॥ मुनियों और पर्वतों ने अनेक भाँति के रत्न और वसुन्धरा ने उन्हें सवारी के लिए मूषक (चूहा)

---

१. तन्नामकरणं च० ।

क्रमेण देवा देव्यश्च मुनयः पर्वतादयः। गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा मनवो मानवास्तथा ॥१३॥
नानाविधानि द्रव्याणि स्वादूनि मधुराणि च। पूजां चक्रुश्च ते सर्वे क्रमाद्वै भक्तिपूर्वकम् ॥१४॥
पार्वती जगतां माता स्मेराननसरोरुहा। रत्नसिंहासने पुत्रं वासयामास नारद ॥१५॥
सर्वतीर्थोदकै रत्नकलशार्वाजितैस्तु तैः। स्नापयामास वेदोक्तमन्त्रेण मुनिभिः सह ॥१६॥
अग्निशुद्धे च वसने ददौ तस्मै सती मुदा। गोदावर्युदकैः पाद्यमर्घ्यं गङ्गोदकेन च ॥१७॥
दूर्वाभिरक्षतापुष्पैश्चन्दनेन समन्वितम्। पुष्करोदकमानीय पुनराचमनीयकम् ॥१८॥
मधुपर्कं रत्नपात्रैरासवं शर्करान्वितम्। स्नानीयं विष्णुतैलं च स्ववैद्याभ्यां विनिर्मितम् ॥१९॥
अमूल्यरत्नरचितचारुभूषाकदम्बकम्। पारिजातप्रसूनानामन्येषां शतकानि च ॥२०॥
मालतीचम्पकादीनां पुष्पाणि विविधानि च। पूजार्हाणि च पत्राणि तुलसी[1]सहितानि च ॥२१॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमानि च सादरम्। रत्नप्रदीपनिकरं धूपं च परितो ददौ ॥२२॥
नैवेद्यं तत्प्रियं चैव तिललड्डुकपर्वतान्। यवगोधूमचूर्णानां लड्डुकानां च पर्वतान् ॥२३॥
पक्वान्नानां पर्वतांश्च सुस्वादुसुमनोहरान्। पर्वतान्स्वस्तिकानां च सुस्वादुशर्करान्वितान् ॥२४॥
गुडाक्तानां च लाजानां पृथुकानां च पर्वतान्। शाल्यन्नानां पिष्टकानां पर्वतान्व्यञ्जनैः सह ॥२५॥
पयोभृत्कलशानां च लक्षाणि प्रददौ मुदा। लक्षाणि दधिपूर्णानां कलशानां च पूजने ॥२६॥
मधुभृत्कलशानां च त्रिलक्षाणि च सुन्दरी। सर्पिःसुवर्णकुम्भानां पञ्च लक्षाणि सादरम् ॥२७॥

प्रदान किया ॥१२॥ क्रमशः सभी देवों, देवियों, मुनियों, पर्वतों, गन्धर्वों, किन्नरों, यक्षों, मनुओं और मानवों ने अनेक प्रकार के स्वादिष्ठ और मधुर उपहार देकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की ॥१३-१४॥ हे नारद! मन्दहास युक्त मुख-कमल वाली जगत्-माता पार्वती ने रत्नसिंहासन पर अपने पुत्र को सुखासीन कर दिया ॥१५॥ अनन्तर मुनियों ने रत्न-कलशों में भरे हुए समस्त तीर्थों के जल से वेद-मंत्र उच्चारण करते हुए उन्हें स्नान कराया। सती ने प्रसन्न होकर अग्नि-विशुद्ध दो वस्त्र प्रदान किये—पुनः गोदावरी के जल का पाद्य एवं गंगोदक का अर्घ्य जो दूर्वा, अक्षत पुष्प एवं चन्दन युक्त था, अर्पित किया। पुष्कर का जल मंगाकर पुनः आचमन और रत्न के पात्र में मधुपर्क और शक्कर मिश्रित आसव प्रदान किया। अश्विनीकुमारों ने उनके स्नानार्थ विष्णु-तैल का निर्माण किया। ॥१६-१९॥ पश्चात् अमूल्य रत्नों के सुरचित अनेक उत्तम भूषण, सौ पारिजात पुष्प, मालती और चम्पा आदि अनेक भाँति के पुष्प समेत पूजा के योग्य पत्र, तुलसीदल तथा चन्दन, अगुरु, कस्तूरी एवं कुंकुम अनेक लोगों ने उन्हें सादर अर्पित किये। अनेक रत्न-प्रदीप समेत चारों ओर धूप, उनका प्रिय नैवेद्य—तिल-लड्डू के पर्वत, यव तथा गेहूँ के आटे के लड्डुओं के पर्वत, सुस्वादु एवं मनोहर पक्वान्न के पर्वत, अति स्वादिष्ठ शक्कर समेत स्वस्तिक के पर्वत, गुड़ मिश्रित धान के लावा के पर्वत, चिउरा के पर्वत, व्यंजनों समेत शालि-अन्न तथा पिष्टकों के पर्वतों समेत दूध भरे एक लाख कलश प्रदान किये उनके पूजन में एक लाख दही भरे कलश और तीन लाख मधु भरे कलश सुन्दरी ने अर्पित किये। एवं घी के पाँच लाख सुवर्ण-कलश भी सादर प्रदान किये ॥२०-२७॥ अनार, श्रीफल समेत असंख्य अन्य फल, खजूर, कैथा, जामुन, आम, कटहल, केला और

१ क. ०र्वाजिता०।

दाडिमानां श्रीफलानामसंख्यानि फलानि च । खर्जूराणां कपित्थानां जम्बूनां विविधानि च ॥२८॥
आम्राणां पनसानां च कदलीनां च नारद । फलानि नारिकेलानामसंख्यानि ददौ मुदा ॥२९॥
अन्यानि परिपक्वानि कालदेशोद्भवानि च । ददौ तानि महाभाग स्वादूनि मधुराणि च ॥३०॥
स्वच्छं सुनिर्मलं चैव कर्पूरादिसुवासितम् । गङ्गाजलं च पानार्थं पुनराचमनीयकम् ॥३१॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । सुवर्णपात्रशतकं भक्ष्यपूर्णं च नारद ॥३२॥
शैलेश्वरी शैलराजः शैलजः शैलराजजः । शैलराजप्रियामात्याः पुपूजुः शैलजात्मजम् ॥३३॥
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं गणेशाय ब्रह्मरूपाय चारवे । सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः ॥३४॥
इत्यनेनैव मन्त्रेण दत्त्वा द्रव्याणि भक्तितः । सर्वे प्रमुदितास्तत्र ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥३५॥
द्वात्रिंशदक्षरो मालामन्त्रोऽयं सर्वकामदः । धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदः सर्वसिद्धिदः ॥३६॥
पञ्चलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिस्तु मन्त्रिणः । मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स च विष्णुश्च भारते ॥३७॥
विघ्नानि च पलायन्ते तन्नामस्मरणेन च । महावाग्मी महासिद्धिः [1]सर्वसिद्धिसमन्वितः ॥३८॥
वाक्पतिर्गुरुतां याति तस्य साक्षात्सुनिश्चितम् । महाकवीन्द्रो गुणवान्विदुषां च गुरोर्गुरुः ॥३९॥
संपूज्यानेन मन्त्रेण देवा आनन्दसंप्लुताः । नानाविधानि वाद्यानि वादयामासुरुत्सवे ॥४०॥
ब्राह्मणान्भोजयामासुः कारयामासुरुत्सवम् । ददुर्दानानि तेभ्यश्च वन्दिभ्यश्च विशेषतः ॥४१॥

नारियल के असंख्य फल तथा हे नारद ! देश काल के अनुसार अन्य असंख्य पके फल, जो अति मधुर एवं सुस्वादु थे, उन्हें हर्ष से अर्पित किये ॥२८-३०॥ स्वच्छ निर्मल तथा कर्पूरादि से सुवासित गंगाजल का आचमन उन्हें प्रदान किया ॥३१॥ हे नारद ! कर्पूरादि से सुवासित, उत्तम एवं रम्य ताम्बूल और भोजन भरे सौ सुवर्ण-पात्र से हिमालय, उनकी पत्नी, पुत्र तथा प्रिय मंत्रियों ने पार्वती-पुत्र की पूजा की ॥३२-३३॥ 'ओं श्रीं ह्रीं क्लीं गणेशाय ब्रह्मरूपाय चारवे सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः।' इसी मंत्र द्वारा हर्षमग्न ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवों ने भक्तिपूर्वक उन्हें सभी वस्तुएँ समर्पित कीं। बत्तीस अक्षर का यह माला-मंत्र समस्त कामनाओं समेत धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फलप्रद एवं समस्तसिद्धिदायक है ॥३४-३६॥ पाँच लाख जप करने से यह मंत्र सिद्ध हो जाता है और जिसको यह मंत्र सिद्ध हो जाता है वह भारत में विष्णु के समान होता है ॥३७॥ उसके नामस्मरण मात्र से विघ्न भाग जाते हैं तथा वह स्वयं महावाग्मी, महासिद्ध तथा समस्त सिद्धियों से युक्त होता है ॥३८॥ वह निश्चित ही बृहस्पति के तुल्य हो जाता है तथा कविसम्राट्, गुणी और विद्वानों के गुरु का गुरु होता है ॥३९॥ देवगण उस उत्सव में इसी मंत्र द्वारा उनकी पूजा करके आनन्दमग्न हो कर अनेक भाँति के बाजे बजाने लगे ॥४०॥ ब्राह्मणों को भोजन कराया, उत्सव किया तथा ब्राह्मणों और वन्दियों को विशेषतया दान समर्पित किया ॥४१॥

---

१ क ०र्व संपत्स०।